राजकुमारी ।

Engraved & Printed by
Burman Press, Calcutta.

श्रीः

राजकुमारी.

सचित्र सामाजिक उपन्यास.

पहिला परिच्छेद.
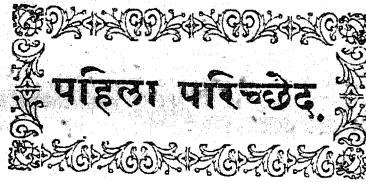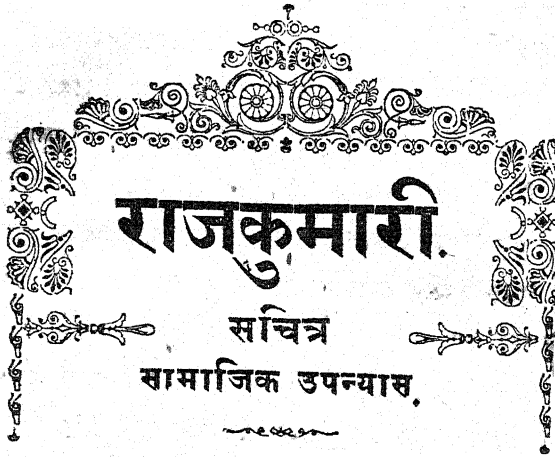
" बालेपन की लागी लगन ! "

"अनङ्गेनाबलासङ्गाज्जिता येन जगत्त्रयी ।
स चित्रचरितः कामः सर्वकामप्रदोस्तु वः ॥

(क्षेमेन्द्रस्य)

एक दिन संझा को एक तेरह-चौदह-बरस की लड़की और एक पन्द्रह-सोलह बरस का लड़का, ये दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए, गङ्गाकिनारे टहल रहे थे। बालक अपने मनबहलाव की मीठी-मीठी बातें कह रहा था, पर बालिका चुपचाप उसकी बातें सुनती और रह रह कर उसके मुहं की ओर निहारती जाती थी। योंहीं थोड़ी देर तक दोनों गङ्गातीर पर इधर उधर टहल कर, फिर घर की ओर लौटे।

जब घर थोड़ी दूर रह गया और सामने दिखाई देने लगा,

तब बालक ने उसकी उंगली दबाकर कहा,—"सुकुमारी! अब तुम घर जाओ।"

यह सुनकर सुकुमारी चिहुंक उठी, मानो अभी तक उसे यह ध्यान ही न था कि, 'मैं कहां हूं!' मानो वह कल की पुतली की भांति चलती हो,!

अब एकाएक घर जाने की बात सुनकर वह चिहुंक उठी और बालक के मुंह की ओर देखकर बोली,—"क्या कहा, मानिक! घर पहुंच गए क्या?"

मानिक,—"तुम क्या नहीं देखतीं? तुम्हारी बाईं ओर यह पीपल का पेड़ है, और वह तुम्हारा घर दीखता है!"

"अरे बप्पारे!" इतना कहकर सुकुमारी जोर से चिल्ला उठी और मानिक का हाथ बरजोरी छुड़ा, उछलकर पीपल के पेड़ से सात-आठ हाथ दूर जा खड़ी हुई!

उसकी ऐसी घबराहट और चञ्चलता देख मानिक ने पूछा,—"क्यों सुकुमारी! कहो, क्या हुआ? तुम इस तरह चिल्लाकर वहां क्यों जा खड़ी हुईं। कोई कांटा-वांटा तो पैर में नहीं गड़ा! ऐं, तुम इतनी कांपी क्यों जाती हो?"

सुकुमारी,—"मानिक! भागो, भागो, जल्दी भागो; उस निगोड़े पेड़ के नीचे न खड़े होवो! भागो, आओ, मेरे पास चले आओ!"

मानिक,—(सुकुमारी के पास जाकर) "अय, कहो तो, सुकुमारी! क्या हुआ! तुम इतनी कांपती क्यों जाती हो? अरे तुम ऐसी पसीने पसीने क्यों होगईं?"

इतना कहकर मानिक ने अपनी धोती के छोर से उसके मुंह का पसीना पोंछ दिया, और हाथ पकड़ कर फिर पूछा,—"क्यों, जी! तुम अपनी घबराहट का भेद न कहोगी?"

सुकुमारी चारों ओर देखकर, बोली,—"देखो, मानिक! मेरी

पीठ देखो ! इस कंबख़्त पेड़ के पीछे मेरी कैसी दशा हुई है !"

मानिक,—(उसकी पीठ देखकर) " एँ ! यह क्या ! यह तो चमोटी की सांटें उपटी हुई हैं ! हाय, तुम्हें किस हत्यारे ने इस तरह मारा है, सुकुमारी ! "

सुकुमारी,—" पिताजी ने ! वाह तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों भर आए, मानिक ! (उसका आंसू अपने अंचल के छोर से पोंछकर) इसीलिये मैं तुमसे जल्दी कोई बात नहीं कहती ! "

मानिक,—" अच्छा, सुकुमारी ! अब मैं उदास न होऊंगा, तुम कहो; तुम्हारे बाबूजी ने तुम्हें क्यों ऐसे निर्दई की तरह मारा ! और इस पेड़ ने क्या किया ? "

सुकुमारी,—(चारों ओर देखकर) "भई ! इन बातों को न पूछो ! योंही मारे डर के मेरा हिया कांपा जाता है ! कोई सुन लेगा तो मेरे प्राण न बचने पावेंगे।"

मानिक,—" सुकुमारी ! डरो मत, यहां कोई नहीं है; सच कहो, क्या बात है ! तुम तो मुझसे कभी कोई बातें नहीं छिपाती थीं, आज तुम्हें क्या होगया है ?"

सुकुमारी,—" कहूँगी, राजकुमार ! कहूंगी; पर मुझे क्षमा करो। इस समय मेरा कलेजा दहला जाता है ! "

मानिक,—(उदास होकर) "अच्छा, जाओ, मत कहो !"

सुकुमारी,—" लो ! तुम तो बिना बात रूठने लगे ! अच्छा, जो यही तुम्हारे जी में है, तो सुनो, इधर आओ।"

इतना कहकर सुकुमारी मानिक का हाथ थामकर उसे एक घने लताकुंज में लेगई और वहां अच्छी तरह चारोओर देखकर बोली,—"राजकुमार ! आज तीन दिन हुए,—आधी रात के समय, कोई खटका सुनकर मेरी आंखें खुल गईं। मैंने देखा कि घर में दीया टिमटिम कररहा है और मां या बाबूजी—कोई भी पास नहीं हैं और दोनों खाटें खाली पड़ी हैं ! यह देखकर मैं बहुत डरी और

चिल्लाया ही चाहती थी कि मेरे कानों में मेरी मां की आवाज़ सुनाई दी; तब मैं कुछ सम्हली। इतने में मेरे बाबूजी ने कहा कि,—'सुकुमारी कहीं जाग न उठे।' इसके जवाब में मेरी मां ने कहा,—'नहीं, नहीं; इतनी रात को वह न जागेगी; और जो जाग ही गई, तो क्या समझेगी!' फिर मानो पिता ने घुड़ककर कहा,—'चुप रहो, वह छोकड़ी बड़ी शैतान है; जो कहीं उसने रत्तीभर भी कोई बात मानिक से कही, तो गजब होजायगा! मुझे मानिक का और उसका संग फूटी आंखों नहीं सुहाता।' मानिक! देखो, कुछ बुरा मत मानना; जब तुमने हठ किया, तो जो बात रही, वह मैंने कही। अच्छा, सुनो, उन बातों को सुनकर मैं चुपचाप उठी और दीया बुझाकर देखने लगी। मुझे अच्छी तरह दिखाई पड़ा कि, 'भंडार-घर के कोने को पिता खोद रहे हैं और मां दीया दिखा रही हैं!' मैं चुपचाप खड़ी खड़ी देखने लगी। आधे घंटे में एक गड़हा खोदा गया और——"

सुकुमारी की बात पूरी भी न होने पाई थी कि किसीके पैर की आहट मिली, जिससे दोनों चौकन्ने हो चुपचाप कान लगाकर सुनने लगे।

सुकुमारी,—(खड़ी होकर) "यह तो बाबूजी का बोल है!"

मानिक,—"हां, है तो सही!"

सुकुमारी,—"तो अब मुझे जाने दो। कल दोपहर को तुम ज़रूर यहां आना। बाकी हाल कल कहूँगी।"

मानिक,—"अच्छा, कल ही सही; पर मेरा जी इस बात को सुनने के लिये ऐसा बेचैन होरहा है कि कल तक कैसे धीरज होगा!"

सुकुमारी,—"कहा मानो, अब मुझे जाने दो; और चलो, तुम भी मेरे घर चलो। दोनों-जने संग बैठकर जलपान करेंगे।"

मानिक,—"नहीं, सुकुमारी! अब नहीं। जब तक मैं तुम्हारी

पूरी कहानी न सुन लूंगा, तुम्हारे घर न जाऊंगा ; क्योंकि तुम्हारे बाबूजी को मेरा जाना नहीं सुहाता। देखो, अभी तुम्हींने न उनकी बातें कही हैं ! और उस दिन भी, जब छत पर हम-तुम पतङ्ग उड़ाते रहे, तो तुम्हारे बाबूजी कितने गुस्सा हुए थे, याद है ? मुझे इस बात का डर है कि मेरे लिये किसी दिन तुम्हें जियादा सांसतें न भोगनी पड़ें, इसलिये तुम जाओ।"

सुकुमारी कुछ उदास हुई और मानिक का हाथ पकड़कर बोली'—"नहीं, नहीं, चाहे जो हो, पर तुम चलो ; मैं तुम्हें लुकाकर ले चलूंगी, बाबूजी न देख सकेंगे ! देखो, मेरी मां तो तुम्हारे संग खेलने के लिये मुझ पर नहीं बकतीं; और मां तुम्हें बड़ा प्यार करतीं हैं। कोई चीज़ हो, पहिले तुम्हें देकर, तब मुझे देती हैं, । इसलिये कहा मानो, चलो।"

मानिक,—"हां, यह ठीक है कि तुम्हारी मां मुझे अपने बेटे की भांति चाहती हैं, पर न जाने तुम्हारे पिता मुझे देखकर क्यों इतना कुढ़ा करते हैं ! हाय, न जाने मैंने उनका क्या बिगाड़ा है, जो वे मुझे देख नहीं सकते ! सुकुमारी ! मैं निर्धन का बेटा हूं और तुम धनी आदमी की बेटी हो ! तुम्हारे संग खेलना ही मेरा अपराध है !"

कहते कहते मानिक की आंखों में आंसू भर आया और सुकुमारी की भी आंखें डबडबा आईं। उसने मानिक की आंखें पोंछकर कहा—"मानिक ! उदास मत होवो ! तुम्हारा उतरा हुआ चेहरा देखकर न जाने क्यों, मेरा हिया फटने लगता है ! और सुनो, एक दिन रात को मुझे सोई हुई जानकर मेरी मां बाबूजी से बातें कर रही थीं। उनकी बातों से मैंने जाना कि तुम गरीब के लड़के नहीं हो ! तुम्हारे पिता, बहुत बड़े आदमी थे ! तो फिर तुम अपने को कङ्गाल क्यों बतलाते हो ? चलो मेरे संग चलो।"

मानिक ने कहा,—"मेरी, सुकुमारी ! तुम कैसी सपने की सी

बातें कर रही हो ! जिसे खाने का भी ठिकाना नहीं, वह धनीपने की ठसक क्या करेगा ! मेरे बाप-दादे चाहे राजा ही क्यों न रहे हों, पर मेरी दशा क्या तुमसे छिपी है ?"

सुकुमारी,—"मानिक ! इन बातों को जाने दो, क्योंकि मुझे दुःख होता है। चलो, चुपचाप मेरे संग चले चलो।"

इतना कह और मानिक का हाथ पकड़कर वह ले चली।

प्यारे पाठक ! देखें, यह, "बालेपन की लागी लगन," आगे कैसा रंग लाती है !!!

दूसरा परिच्छेद.

" संग छिन छोड़त नाहिं बनै ! "

"अकृत्रिमप्रेमरसा, विलासालसगामिनी ।
असारे दग्धसंसारे, सारं सारङ्गलोचना ॥"

(भारवेः)

सुकुमारी मानिक का हाथ पकड़कर ले चली। चलते चलते मानिक ने एक लंबी सांस लेकर रोवासी सी आवाज़ से कहा,—"सुकुमारी ! तुम्हारी बात सच है ! इतना तो मैंने भी सुना है कि मेरे पिता बड़े धनवान थे; पर हाय, मुझे तो एक कौड़ी भी न मिली ! इतने बड़े धनी बाप के लड़के की ऐसी दशा हो कि भीख मांगने की नौबत पहुंचे ! सब अपने भाग्य की बात है; किन्तु सुकुमारी ! क्या सब दौलत मेरे बाप के साथ ही चली गई !"

सुकुमारी,—"मानिक ! उदास मत होवो ; देखो, मैंने मां से सुना है कि भगवान सबका बेड़ापार लगाते हैं ! तो क्या वे तुम्हारी ओर आंख उठाकर न देखेंगे ? और भई, मेरी छोटी सी उमर और थोड़ी सी बुद्धि ; भला मैं तुम्हारी बातों का क्या जवाब दूं और क्योंकर तुम्हें समझाऊं ? मैं तो खाली इतना ही कह सकती हूं कि तुम उदास न हुआ करो। मैं सब कुछ सह सकती हूं, पर तुम्हारा उदास मुंह नहीं देख सकती ।"

मानिक,—"मेरी सुकुमारी ! मैं भी अभी निरा अज्ञान बालक ही तो हूं. पर दुःख-बिपत पड़ने से बड़ी बड़ी बातें मेरे ध्यान में आती हैं ! ऐसा जी चाहता है कि— — — —"

सुकुमारी,—"बस, दया करो; इतना ही सुनकर मेरा हिया धड़कने लगा, तो फिर तुम्हारी पूरी बातें सुनकर क्या हाल होगा?

जाने दो, घर चलो! राम सब का भला करेगा।"

मानिक,—"हां सुकुमारी! केवल तुम्हारा ही मुंह देखकर मैं अपने जी की बात जी ही में दबाए रहता हूं! और सच पूछो तो मैं जब तक तुम्हारे संग रहता हूं, न जाने क्यों, मेरे सब दुःख कहां चले जाते हैं! और जहां तुम मेरी आंखों की ओझल हुईं, कि फिर इन हत्यारों ने कलेजे में सुई चुभाना शुरू किया!"

सुकुमारी,—"लो, घर पहुंच गए! कहो तो पिछवाड़ेवाले दरवाजे से चलूं जिसमें कोई तुम्हें न देखे!"

मानिक,—"नहीं, सुकुमारी! छिपकर चलने में और बुराई खड़ी होगी! जो कहीं, तुम्हारे बाबूजी किसी ढब से मेरा छिपकर जाना जान लेंगे, तो वे और चाहे कुछ न कर सकें, पर हमारा-तुम्हारा संग खेलना बन्द कर देंगे; इसलिये मैं नहीं चाहता कि मेरे जाने से तुम्हारे ऊपर कोई नई आफ़त खड़ी हो! देखो, अभी तक इतना तो है कि जब तुम स्कूल से फिरती हो, तो घड़ी भर तुम्हारे संग खेलता या बोल बतला लेता हूं, फिर जो इतना भी छुट जायगा, तो कहो, क्या होगा?"

सुकुमारी,—"मेरे मानिक! मेरे लिये तुम कुछ सोच न करो! पढ़ने-लिखने से मेरी आंखे खुलगई हैं! उमर तो बेशक मेरी बहुत छोटी है, पर मेरे हौंसले बड़े-बड़े हैं! यदि कोई मुझे घर में,—ताले में भी बन्द कर रक्खेगा, तौ भी किसी न किसी तरह दिन रात में एक बेर मैं तुमसे ज़रूर मिलजाऊंगी! यदि मेरे बाबूजी तुम्हारे संग बोलने के लिये मुझे टूक-टूक कर डालें, तौ भी मैं तुमसे मिलने से मुंह न मोड़ूंगी। इतने दिनों तक मेरे जी की बात जी ही में थी, पर आज लाचार होकर कहनी पड़ी! अब तुम कहो, मेरे घर चलोगे, कि नहीं?"

इतना कहकर सुकुमारी ने मानिक के उत्तर का भी आसरा न देखा और उसका हाथ पकड़े हुई सदर-दरवाजे से वह अपने

घर के भीतर घुसो और जनाने में जाकर उसने मानिक को एक कोठरी में बैठाया ।

तीसरा परिच्छेद.

" घात करत नित नई ! "

"विशिखव्यालयोरन्त्यवर्णाभ्यां यो विनिर्मितः।
परस्य हरति प्राणान्नैतच्चित्रं कुलोचितम् ॥ "

(कलाधरस्य)

सुकुमारी मानिक को जिस कोठरी में बैठा गई थी, वह घर के दूसरे मरातिब में, और भंडारघर के ठीक ऊपर थी। उसके बगल में एक और कोठरी थी, जिसके बीचोबीच एक द्वार था, जो खुलने पर दोनों कोठरियों को एक कर देता था। उस द्वार के इधर एक सांकल थी, जो कुंडे में लगी हुई थी और उसमें ताला बन्द था। मानिक को उस कोठरी में पांव रक्खे पांच मिनट भी नहीं हुए थे कि उसके कानों में बगलवाली कोठरी से किसी दो आदमियों की बातचीत करने की आहट मालूम हुई! चट उसने दरवाज़े के पास जाकर कान लगाया, पर पूरे तौर से कुछ सुनाई या समझाई न दिया! पर जो कुछ मानिक ने सुना या समझा, वही उसको भय और अचरज के समुद्र में डाल देने के लिये बहुत था! उसके सुनने या समझने में जो कुछ आया, उसका सारांश हम नीचे लिखते हैं,—

एक—" नहीं, नहीं, हम क्या झूठ कहते हैं! जो बातें अपने कानों से सुनीं, और जो हाल अपनी आंखों से देखा, उसमें धोखा कभी होसकता है ? बेशक तुम इन बातों को सुनकर चकपकाए होगे, पर हुसैनी ! सच जानो, यह लौंडा आफत का परकाला है। जब तक यह इस दुनियां-जहान से बिदा न कर दिया जायगा, तब तक हमें रात को नींद भी अच्छी तरह न आवेगी।"

दूसरा,—"आप जो कुछ कहैं, मैं करने को तैयार हूं, पर इस बात को आप अच्छी तरह सोच लीजिए! इसका नतीजा हम लोगों के हक में तो नहीं, पर आपके हक में कहीं बुरा न निकले! हां एक बात, जो बहुत अच्छी, और सहजहै,पहिले उसीको करके क्यों नहीं देखते!"

एक,—"वह कौन सी बात है, जो मानिक के जीते जी हमारे मन के माफ़िक होसकती है?"

दूसरा,—"एक तो यह कि आप अपने यहां उसका आना एक दम से बन्द करदें, और साथ ही लड़की को भी अब स्कूल जाने से रोक दें। ऐसा करने से एक दूसरे से न किसी तरह मिल सकेगा, न घर का या आपका भण्डा फूटेगा, पर वाह रे छोकड़ी! इसने तो बड़ी बड़ी चालाक औरतों के भी कान काटे!"

एक,—"अजी! वह तो बहुत भली लड़की थी; इसी हत्यारे लौंडे ने उसे खाने-खराब कर डाला! खैर, देखा जायगा, हमारे चंगुल से निकल कर बच्चाजी कहां जायंगे! स्कूल का जाना तो हम कल ही से बन्द कर देंगे, और देखेंगे कि फिर किस तरह के दोनों कम्बख़्त इकट्ठे हो घुट घुट कर बातें करते हैं!"

दूसरा,–"दूसरा उपाय यह है कि उस पेड़के पास जो आपका खण्डहर है, उसमें एक फूंस या किसी तरह का छप्पर डलवाकर वहां एक जँचा हुआ आदमी पहरे पर रखदें कि जिसमें किसी तरह वह लौंडा उस गुप्त भेद की गन्ध तक न पा सके! बस अभी तो ये ही दो उपाय बहुत हैं; पर हां यदि उसे खपाये बिना काम न चलेगा, तो यह कौन बड़ी बात है! आज न सही, दस दिन पीछे सही!"

एक,—"अच्छी बात है; पहिले जो तुम कहते हो, वही काम किया जाय; फिर देखा जायगा।"

फिर वे दोनों ऐसे धीरे धीरे बोलने लगे कि मानिक ने कुछ भी

न समझा, पर जो कुछ समझा, वही उसके कलेजे के टुकड़े उड़ाने के लिये क़ाफ़ी था ! उस समय उसकी दशा कोई देखता तो जल्दी यह नहीं विश्वास करता कि, 'यह लड़का सचमुच जानदार है !'

प्यारे पाठक ! बगलवाली कोठरी में जो दो आदमियों की बातें आपने अभी सुनीं, उनमें एक व्यक्ति कौन था, यह भेद अभी नहीं खुला, पर दूसरा व्यक्ति हुसैनी नाम रखता था । ये दोनों कौन थे, इनका मतलब क्या था, मानिक और किसी लड़की से इनका क्या बैर था, पेड़ में क्या बला समाई हुई थी, इन सब बातों का भेद आगे चलकर आप ही धीरे धीरे प्रगट होजायगा ।

चौथा परिच्छेद
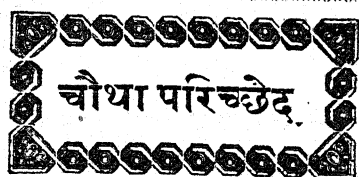
"नैनन के दोऊ तारे!"

"इमौ द्वौ सुन्दरौ धीरौ, बालिका-बालकौ मम।
अतीव लोचनानन्ददायकौ गुणनायकौ॥"

(व्यासस्य)

यह हम पहिले कह आए हैं कि सुकुमारी मानिक को एक कोठरी में बैठाकर अपनी मां से उसकी ख़बर करने गई थी। उसने इधर उधर कई कोठे, दालान, छत, भण्डारघर और रसोईघर में अपनी मां को न देख मजुन्नियों से पूछा कि, 'मां कहां हैं?' पर उन लोगोंने भी ठीक न बताया! इतने ही में जब कि वह अपने सोनेवाले घर में जा रही थी, उसने अपनी माँ को आंखें पोछती हुई सीढ़ी उतरते देखा!

सुकुमारी,—"मैया! तुम कहां थीं? मैंने सारा घर खोज डाला! ऐं, तुम रोती क्यों हो, मां?"

सुकुमारी की मां ने सीढ़ी से उतर उसे कलेजे से लगा लिया, मुंह चूमा और पीठ पर हाथ फेरती हुई वह मुस्कुराकर बोली,—"क्यों बेटी! आज पाठशाले से इतनी देर कर के क्यों आई?"

सुकुमारी,—"देखो मैया! आज मानिक नहीं आते थे, मैं उन्हें बरजोरी घसीट लाई हूं, पानीघर की बगल-वाली कोठरी में वे बैठे हैं।"

सुकुमारी की मां,—"क्यों? क्या हुआ है, जो वह नहीं आता था? तैंने कुछ कहा है, या तुझसे उससे कुछ लड़ाई हुई है?"

सुकुमारी,—"भला, मैं कभी भी उनसे लड़ती हूं! खेल में मेरी गुड़ियों को वे नोच डालते हैं, तब तो मैं कुछ कहती ही नहीं!

न जाने क्यों, आज वे कहते थे कि अब मैं तुम्हारे घर न आऊंगा!"

सुकुमारी की मां,—" चल तो, मैं पूछूं कि क्या बात हुई है!"

यह कहकर दोनों मां-बेटी मानिक के पास गईं, पर उसे कुछ भी खबर न थी कि कौन आया! वह बगलवाली कोठरी से सिर लगाए, और आंखें बन्द किए अजब ढंग से बैठा था! उसकी ऐसी दशा देख सुकुमारी बड़ी बेचैन हुई। यदि उसकी मां वहां न होती, तो वह अब तक कभी की मानिक के गले से लपट गई होती; पर मां के संकोच से किसी तरह मन को मार कर कलेजा थाम्हें खड़ी रही, पर घबरा कर अपनी मां से इतना जरूर बोल उठी,—" ऐं, यह क्या! देखो मां! इन्हें क्या होगया?"

"कुछ नहीं बेटी",—इतना कहकर उसकी मां एक बेर बगलवाली कोठरी की ओर देखकर ज़रा कांप उठी और चट मानिक का हाथ थाम कर उसे उठाती हुई बोली,—" क्यों बेटा! मानिक! आज तू इतना उदास क्यों होरहा है? ऐं! तू सुकुमारी से कहता था कि, 'अब मैं तुम्हारे घर न जाऊंगा'; सो क्यों? क्या हुआ है? किसीने कुछ कहा है, क्या?"

इतना कह और उसका हाथ पकड़कर सुकुमारी की मां उसे अपने सोने वाले घर में लेगई। मानिक भी चुपचाप चला गया, पर बोला कुछ नहीं! घर में जाकर सुकुमारी की मां ने दोनों को मिठाई खाने को दी। दोनों एक जगह बैठ कर संग खाने लगे।

जब सुकुमारी की मां पानी लेने के लिये बाहर चली गई, तो मानिक ने धीरे धीरे सुकुमारी से कहा,—"तुमने मां से सब बातें कह दीं, क्या?"

सुकुमारी,—" कोई बात नहीं कही; केवल उतनी ही बात मैंने कही है, जितनी मैया ने तुमसे पूछी थी।"

मानिक,—" खैर, जो कहा, सो कहा; पर अब जियादा कुछ न कहना।"

सुकुमारी,-"वाह! मुझे तुमने निरी पागल समझ लिया है, क्या?"

मानिक कुछ और कहा चाहता था कि इतने में सुकुमारी की मां पानी लेकर आई, दोनों ने पानी पिया। फिर सुकुमारी की मां बोली,—" बेटा मानिक! जब स्कूल से लौटा कर, तो जैसे पहिले आता था, वैसेही चला आया कर। यहां जलपान कर और सुकुमारी के साथ खेलकर तब फिर अपने घर जाया कर। बेटा! तू और सुकुमारी,—दोनों मेरी आंखों के तारे हो, बोल आवेगा न!"

सुकुमारी की मां की प्यार-भरी बातें सुनकर मानिक की मनरूपिणी नदी का बांध टूट गया, आंखों की राह आसुओं की धारा बह निकली और उसने रुंधे हुए गले से कहा—" मां! मैं निरा कंगाल हूं; और दस घर मांगकर पेट भर लेता हूं। भला, मेरा इतना बड़ा हौसला कहां कि मैं बराबर बेधड़क यहां आया करूं! उस दिन मेरे आने से बाबूजी सुकुमारी पर बहुत बिगड़े थे। मां, मेरे आने से बुराई पैदा होती है, इसलिये मुझे क्षमा करो; अब मैं न आऊंगा।"

कहते कहते मानिक सुकुमारी की मां के पैरों पर गिरकर सुसुक-सुसुक कर रोने लगा। दोनों मां-बेटी भी आंसू गिराने लगीं। सुकुमारी की मां ने उसे उठाकर कलेजे से लगाया, उसका आंसू पोंछा और उसके सिर पर हाथ फेरती हुई यों कहा,—"नहीं, बेटा! तू उनकी बातों का खयाल मत कर! उनका स्वभाव ही ऐसा है तू जैसे पहिले आता था, वैसे ही अब भी बराबर आया कर! कौन ऐसा पैदा हुआ है, जो तेरा आना बन्द करैगा! मैं समझ लूंगी, तू कोई फिकर मतकर। (बेटी से) अरी सुकुमारी! जा, मानिक को ऊपर छतपर लेजा, इसका जी बहलै।"

मां के कहते ही सुकुमारी मानिक का हाथ पकड़कर, उसे छतपर ले चली। वह भी उस सोने की पुतली के संग कठपुतली की भांति विना कुछ कहे सुने चला।

पांचवां परिच्छेद.
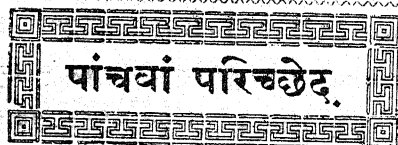
"प्रीत की रीत निराली देखी !"

"प्रेम सत्यं तयोरेव, ययोर्योगवियोगयोः।
वत्सरा वासरीयन्ति, वासरीयन्ति वत्सराः।"

(कुमारपालितस्य)

छत पर पहुंचकर सुकुमारी ने कहा,—"क्यों जी, इस घर की चौखट के अन्दर पांव रखने के पहिले तो तुम इतने सुस्त और उदास न थे, फिर क्या हुआ, जो तुम्हारा चेहरा इतना सूखा सा होरहा है ?"

मानिक,—"सुकुमारी ! आज यहां मेरा आना बहुत अच्छा हुआ ! एक ऐसी बात मैंने सुनी है, जिसका जान लेना मेरे लिये बहुत अच्छा हुआ। यद्यपि उसका पूरा पूरा मतलब मेरी समझ में नहीं आया, पर जो कुछ जाना गया, उतना ही बहुत है !"

सुकुमारी,—"यह कौन सी ऐसी नई बात है, जो तुमने अभी जानी है ?"

मानिक,—"मैंने नीतिसार में पढ़ा है कि, 'कोई छिपी या गुप्त बात रात के समय मुंह से नहीं निकालनी चाहिए। किन्तु यह तो ऐसी बुरी बात है, कि इसे सुनकर तुम्हें बहुत खेद होगा।"

सुकुमारी इतना सुनकर चिहुंक उठी और चारों ओर देख-भालकर फिर पास आ बैठी और बोली,—"लो, अब कहो, क्या बात है; इसके सुनने के लिये मेरा जी बेचैन होरहा है !"

मानिक,—"प्यारी, मेरी ! अभी तुम उन बेसिर-पैर की बातों को सुनकर क्या करोगी ? नाहक और भी जी बेचैन होजायगा; और जो कहीं लड़कपन के कारण कभी कोई बात तुम्हारे मुंह से निकल गई तो— — —"

सुकुमारी,—"क्यों जी! मैंने विद्यांकुर, भूगोल, गणित और कई पोथियां पढ़ डालीं, और स्कूल में भी अपने क्लास की सब लड़कियों से बराबर ऊपर रही, इनाम भी मैंने ही लिया! फिर भी अभी तक मुझमें लड़कपन भरा है! और हाय! तुम्हारी बातें मैं मां से तो कहती ही नहीं, दूसरे से कब कहूँगी? प्यारे मानिक! हाय! तुम्हें अभी तक मेरा विश्वास नहीं हुआ!"

मानिक,—"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है। सुकुमारी! तुम इस तरह अपना जी छोटा न करो; मैंने तो एक बात कही थी। जो तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास नहीं होता, तो मैं आज तक सभी बातें तुमसे खोलकर क्यों कहता? तुम्हीं सच सच कहो, मैंने कभी कोई बात तुमसे छिपाई है?"

सुकुमारी,—"मैं क्या जानूं, छिपाई है या नहीं! मैं क्या तुम्हारे मन के भीतर घुसी हूं।"

मानिक,—(हंसकर) "ले कुढ़गई न! अच्छा सुनो।"

यह कहकर उसने उठकर और फिर चारोंओर अच्छीतरह से देख-भाल कर और सुकुमारी के पास बैठकर उसके कान में जो जो बातें कोठरी में बैठे बैठे सुनी थीं, सब समझाकर कह सुनाईं, जिन्हें सुन सुकुमारी ऐसी सन्न होगई कि काटो तो खून न निकले!"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे, फिर सुकुमारी आंखें डबडबा कर बोली—"अब इसका क्या उपाय करना चाहिए?"

मानिक,—"हमलोगों के सब उपाय केवल नारायण हैं! खैर कुछ चिन्ता न करो, भगवान अच्छा ही करेंगे! घबराने से काम न चलेगा!"

सुकुमारी,—"सुनो भई! जो यहां न आने से तुम्हारी भलाई होती हो, तो कल से कभी मत आना। मैं तुम्हारी जुदाई में अपनी जान देदेना अच्छा समझती हूँ, पर अपने कारण तुम्हारे ऊपर

किसी तरह की आंच पहुंचे, यह नहीं चाहती ।"

मानिक,—"हां, प्यारी सुकुमारी! तुम्हारी प्रीति का मुझे बड़ा भरोसा है, तुम हमारे लिये सब कुछ सह सकती हो; पर घबराने से काम न चलेगा। धीरज धरो, और सुनो! थोड़े दिन मैं यहां का आना-जाना बन्द कर देता हूं! देखो फिर रोने लगीं! (उसका आंसू पोंछकर) देखो, पक्के पुल के नीचे कभी कभी भेंट हुआ करेगी।"

इतना कहकर मानिक ने उसे अपनी गोद में लिटा लिया और उसके जी बहलाने के लिये वह इधर-उधर की बातें करने लगा।

मानिक,—"प्यारी सुकुमारी! देखो, चांद में काला धब्बा सा क्या दिखाई देता है?"

सुकुमारी,—"मैंने भूगोल में पढ़ा है कि वह भूमि की छाया है।"

मानिक,—"परन्तु परछाहीं पड़ने पर भी चांद है बड़ा सुंदर!"

सुकुमारी ने मानिक की ओर देख हंसकर कहा,—"क्या जानूं!"

मानिक,—"वाह री, भोली! जानो, कुछ जानती ही नहीं! अच्छा; तुम्हारे देखने में कौन सुंदर है,—चांद या तारे?"

सुकुमारी,—(मुसकुराती हुई) "कोई भी नहीं!"

मानिक,—"क्या, तुम्हारे लेखे संसार में कोई सुंदर हई नहीं!"

सुकुमारी,—"है क्यों नहीं।"

मानिक,—"कौन सी चीज़?"

सुकुमारी,—(मुसकुराकर) "तुम!"

मानिक,—"क्या कहा?"

सुकुमारी,—"कुछ नहीं।"

मानिक,—"जाओ, तुम बड़ी कपटिन हो!"

सुकुमारी,—" यह तो सच कहते हो; मैं बड़ी खोटी हूं, फिर

क्या कहते हो ?"

मानिक,—"वही कि तुम्हारे जान कौन सुंदर है ?"

सुकुमारी,—"तुम !"

मानिक,—"क्या मैं इतना सुंदर हूं ?"

सुकुमारी,—"क्या जानूं ! मेरी आंखों से देखो, तो जान पड़े !"

मानिक,—"सुकुमारी ! तुम्हारा यही प्यार तो मेरे जीवन का आधार है; नहीं तो अब तक न जाने मैं किस दशा को पहुंच गया होता !"

सुकुमारी,—"फिर तुमने वही सत्यानाशी बात छेड़ी ! ऐसी ऐसी बातों को मैं नहीं सुनना चाहती।"

मानिक,—"अच्छा, दूसरी सुनो। मेरी आंखों ने किसे सुंदर माना है, सो सुनोगी ?"

सुकुमारी,—(हंसकर) "नहीं, नहीं; मैं सब जानती हूं, रहने दो !"

मानिक,—"अच्छा, सुकुमारी ! सच कहो, तुम मुझे चाहती हो ?"

इसपर सुकुमारी चुप रही, पर मानिक के बहुत हठ करने पर बोली,—"मैं कुछ नहीं जानती, अपने दिल से पूछो।"

इतना सुनते ही मानिकचन्द का मन, बरसाऊ घटा देखकर, मोर की तरह नाचने लगा। वह सब दुःख और सोच भूल गया ! उसने सुकुमारी को कलेजे से लगा लिया और योंही थोड़ी देर तक एक दूसरे के कलेजे से सटा रहा। रात एक घण्टे से जादे बीत गई थी, इसलिये मानिक उठा और चलने के लिये तैयार हुआ।

सुकुमारी,—(उसका हाथ पकड़कर) "देखो, मुझे भूल ना जाना।"

मानिक,—"भला, यह कभी होसकता है ? तुम मेरी आंखों

की तारा हो !"

सुकुमारी,—"अच्छा, कल कहां भेट होगी ?"

मानिक,—"उसी पुल के नीचे।"

इसके बाद दोनों छत से उतरे। दो मरातिब तक सुकुमारी मानिक को पहुंचा गई और वह सुकुमारी से बिदा होकर घर चला।"

छठवां परिच्छेद.
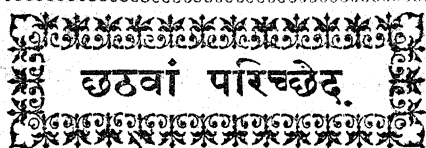
" चलाचली की बेरा है ! "

''मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥"

(श्रीमद्भागवतस्य)

एक घंटे रात बीत चुकी थी, जब मानिक सुकुमारी से विदा होकर अपने घर लौटा था। चलते चलते उसके कच्चे कलेजे में तरह तरह के सोच-बिचार उठने लगे। थोड़ी दूर जाकर वह एकाएकी रुक गया और सोचने लगा कि, " मैं किधर आया ! " फिर चारों ओर देख-भाल-कर एक ओर घूमा और अपने डेरे की ओर चला। सुकुमारी के घर से अंदाजन पांच सौ कदम चलने पर वह नदी-किनारे एक बड़े भारी खंडहर के पास पहुंचा और उस खंडहर को देख उसने एक लंबी सांस ली।

वह खंडहर, जिसकी जगह कुछ काल पहिले बड़े सुहावने राजमहल खड़े थे, अब इस दशा को पहुंच गया है कि दोचार टूटे फूटे घरों के सिवाय ईंट, पत्थर, लकड़ी और मट्टी के ढेर के, या जंगली बड़, पीपर, पाकर, करील और झरबेर के, और कोई ऐसी जगह नहीं बची है, जिसमें कोई भूला भटका बटोही भी किसी तरह बेखटके एक रात काट सके ! इसी खंडहर में, जो कि बड़ा भयावना और सांप-बिच्छुओं का घर होरहा था, मानिक घुसा और कई ऊबड़-खाबड़ टीले, और कंटीले जंगल को लांघता, उतरता-चढ़ता एक मकान की गिरी हुई छत पर चढ़ उससे दूसरी छत पर चढ़ा और वहांसे काठ की सीढ़ी के सहारे से नीचे उतर एक कोठरी में पहुंचा; फिर "मौसी मौसी" कहकर देर तक पुकारा

किया; पर कोई जवाब न मिला तो दूसरी कोठरी में घुसा। उस कोठरी में पैर रखते ही उसकी नजर साम्हने चटाई पर अचेत पड़ी हुई एक बुढ़िया पर पड़ी, जिसे देखते ही मानिक चिल्लाकर गिर पड़ा और "मौसी मौसी" कहता हुआ उससे लिपट कर रोने लगा।

थोड़ी देर में उस बुढ़िया को चेत हुआ और बहुत धीमीं आवाज से वह बोली—"कौन है, बेटा! मानिक!"

मानिक०। (रोते रोते) "हां! मौसी! मैं ही हूं। तुम्हारा जी कैसा है? आज तुम बहुत सुस्त होरही हो! कल तो तुम कहती थीं कि, "बुखार छुट गया, अब मैं अच्छी हूँ;" फिर क्या हुआ? हाय! जो मैं जानता कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं हुई, तो तुम्हें छोड़कर कभी स्कूल न जाता। हाय मौसी! तुमने आज बरजोरी मुझे अपने पास से हटाया! कहो तो, बालाजी वैद्य को अभी बुलाऊं?"

बुढ़िया०। 'बेटा! घबराना मत। इस समय तू अपने कलेजे पर सिल रख, और जो मैं कहती हूँ, उसे ध्यान देकर सुन। अब बालाजी-लालाजी से कुछ न होगा क्योंकि मेरे दिन पूरे होचुके, इस घड़ी तू मेरे पास बैठ और जो मैं कहूं, सो कर।"

बुढ़िया की बात सुनकर बेचारा बालक मानिक रोने लगा, परन्तु बुढ़िया ने बहुत धीरज दिया और जल मांगा।

मानिक ने गंगाजल लाकर उसके मुंह में सुतुही से पिलाया। थोड़ासा जल पी कर वह बोली—"बेटा! मानिक! इस ताली को अपने पास रखना, कभी भूल कर भी इसे न खोना। यह उस बुखारी की ताली है, जो कूएं के बगल में है। उस बुखारी के आले का खोलना तो तुझे याद है न!"

मानिक०। (सुसुकता हुआ) "हां याद है।"

बुढ़िया—"उस आले में एक दूसरी ताली है, जो तहखाने के दरवाजे में लगती है। वहां जाकर तू दो संदूक देखेगा। पहिले

छोटी सन्दूक खोलियो, पीछे बड़ी। उन दोनों की ताली मेरे रसोईघर में चूल्हे के नीचे डिबिया में गड़ी है। पानी—"

मानिक ने फिर उसे पानी पिलाया, जिसे पीकर वह फिर बोली—"बेटा। जो कुछ हाल है, सो सब तुझे उन कागजों से मालूम होजायगा, जो उन सन्दूकों में बन्द हैं। सावधान! बहुत समझ बूझ कर काम करियो और दुशमनों से बचा रहियो। ब्रह्मचारीजी को मैं ख़बर देचुकी हूं, वे आकर तेरी रखवाली करेंगे। जितना वे कहें, उतना ही तू करियो। और हां, तेरा जंतर (तावीज] पेचदार डिब्बे में बन्द किया हुआ कुएं में पड़ा है। और—जल—"

मानिक ने फिर जल दिया और उसे पीकर फिर बुढ़िया कहने लगी—"देख! अब मैं चली! मुझे इसो कोठरी की छत से गङ्गा में डाल दीजो और जब तक ब्रह्मचारीजी न आवें, मेरे मरने की खबर उस हत्यारे पापी के कानों—राम—"

आगे फिर उससे न बोला गया। मानिक ने दौड़कर उसके मुंह में गङ्गाजल चुआया, पर वह भी बह निकला! देखते देखते उस अनाथ बुढ़िया का प्राण एक अबोध बच्चे को निराधार छोड़ कर उड़ गया!!!

प्यारे पाठक! आपलोग सोच सकते हैं कि उस समय बेचारे मानिक-सरीखे नादान बालक के चित्त पर क्या बीती होगी? रात का समय, उजाड़ खण्डहर, न कोई आगे न पीछे, सूनसान मसान ऐसे घर में सामने मुरदा पड़ा है! यह सब देख देख कर मानिक की क्या दशा हुई होगी? किन्तु हा! गरीबी जो चाहे, सो करवावे! हाय रे समय! तेरी बलिहारी!!!

निदान, घंटों तक मानिक मुर्दे पर पड़ा पड़ा रोता रहा, इतने ही में किसीने छतपर से पुकारा "मानिक!" अब मानिक को काटो तो खून नहीं! वह काठ होगया और सोचने लगा कि,

"यह कौन है, जो इस समय यहां आया! मैं तो इसकी आवाज़ नहीं पहिचानता!" पर उसे बहुत सोच-विचार करने का समय न मिला और एक बूढ़े ने नीचे उतर मानिक के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"बेटा, मानिक! तू अच्छा है?"

मानिक ने एक बेर अच्छी तरह उस बूढ़े को सिर से पैर तक देखा और फिर सूरत शकल से उसे चीन्ह कर उसके चरण पर गिरकर रोने लगा।

मानिक,—"हाय मौसी! इस समय तू कहां है! ब्रह्मचारीजी महाराज! यदि थोड़ी देर पहिले आप आए होते तो मौसी से जरूर भेंट होती! हाय, मेरी मौसी कहां गई, मौसी रे!"

अभी जो बूढ़ा आया, उसे पाठकों ने चीन्हा होगा; इसी बुड्ढे की बात बुढ़िया ने मरती बार मानिक से कही थी। ब्रह्मचारी ने मानिक को धीरज दे बहुत समझाया और फिर वह बुढ़िया को अकेले उठाकर नदीतीर लेचला, मानिक भी सङ्ग चला। नदी-किनारे जाकर चिता बनाई गई, जिस पर बुढ़िया की लोथ रक्खी गई। मानिक ने बहुत चाहा कि, 'मैं अग्निसंस्कार करूं', पर ब्रह्मचारी ने न माना, स्वयं अपने हाथ से चिता में आग लगादी और सूर्योदय के पहिले ही बुढ़िया का नाम-निशान संसार से मिट गया!

बड़े तड़के दोनों जने बुढ़िया को तिलाञ्जली देकर घर लौटे।

सातवां परिच्छेद.

"आज छलिया छल करि गयो रे !"

"अतिमलिने कर्त्तव्ये, भवति खलानामतीव निपुणा धीः।
तिमिरे हि कौशिकानां, रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः॥"
(सुबन्धोः)

हम ऊपर यह बात कह आए हैं कि ब्रह्मचारी उस बुढ़िया को फूंककर मानिक के साथ पौ फटने के पहिले ही लौटा और थोड़ी देर लेट पोट कर मानिक को एक छिपी हुई कोठरी में लेजाकर बात-चीत करने लगा। बातों ही बातों में मानिक ने सब हाल, जो कुछ कि बुढ़िया के मुंह सुना था, कह सुनाया; उसे ब्रह्मचारी ने बड़े ध्यान से सुना और थोड़ी देर कुछ मन ही मन सोच-विचारकर कहा,-"बेटा, मानिक! आज हमने तेरी बुद्धि का परिचय पाया। ऐसी छोटी अवस्था में इतनी समझ का होना बहुत ही कठिन है! लोग कहते हैं कि विपत्ति में बुद्धि भ्रष्ट होजाती है, पर यहां तो उलटी बात हुई कि उसी विपत्ति ने तुझे बालकपन ही में चतुर और संतोषी बनाया! तेरी बुद्धि, चतुराई और संतोष देखकर हमें इस बात का पूरा पूरा विश्वास होता है कि एक न एक दिन तू अवश्य अपने बाप-दादों की मान-मर्यादा को पहुंचेगा।"

मानिक ने आंसू पोछकर कहा,—"गुरूजी! मेरे तो ऐसे भाग्य नहीं हैं कि पुरखाओं की पदवी को पाऊं, आगे आपकी असीस से जो होजाय सो थोड़ा!"

ब्रह्मचारी,-"अच्छा, अब उस कोठरी में चलना चाहिए, जिसमें वे दोनों संदूक हैं।"

मानिक,—"बहुत अच्छा, चलिए।"

इतना कहकर मानिक उठ खड़ा हुआ और रसोई-घर में पहुंच-कर बोला,—"पहिले उन संदूकों की ताली निकाल लेनी चाहिए, क्यों कि तहखाने में पहुंचते ही उनका काम पड़ेगा।"

ब्रह्मचारी,—"हां, हां, पहिले ताली ही निकाल ले।"

इतना सुन मानिक ने फावड़े से चूल्हा खोद डाला और उसके भीतर से तालियां निकालीं, जो हाथभर जमीन के अन्दर एक ढकनेदार कटोरे में बंद थीं। उन तालियों को, और बुखारी की ताली को, जो बुढ़िया ने मरती बेर दी थी, लेकर, ब्रह्मचारी के साथ दो मरातिब नीचे उतर कर मानिक ने कहा,—"देखिए, यही कुआं है, और यह बुखारी है, इसके आले को भी मैं खोदता हूं।"

ब्रह्मचारी,—"हां, खोद डाल।"

ब्रह्मचारी के "हां" करते ही मानिक ने बुखारी का ताला खोल और भीतर जाकर उसी फावड़े से बुखारीवाले आले को तोड़ा और उसके भीतर से तहखाने की ताली निकाली; फिर उससे तहखाने का ताला खोलकर भीतर पैर रखते ही कहा,—"गुरूजी! यहां तो बड़ा अंधेरा है, कुछ सूझता ही नहीं!"

ब्रह्मचारी,—"कुछ चिन्ता नहीं! हम अभी इसका उपाय करते हैं।"

इतना कहकर ब्रह्मचारी ने अपनी कमर से मोमबत्ती निकाल कर जलाई, फिर दोनों आगे बढ़े। ज्योंहीं मानिक की आंखें दोनों संदूकों पर पड़ीं, वह मारे खुशी के उछल पड़ा और जल्दी से पास जाकर एक संग दोनो संदूकों में उसने ताली लगादी, पर भरज़ोर घुमाने पर भी ताली न घूमी; फिर उस ताली में दूसरी ताली डालकर घुमाई, तौ भी न घूमी; तब उसने घबराकर संदूक का ढकना उठाया, तो तुरंत खुल गया! यह बिचित्र तमाशा देखकर मानिक और भी व्याकुल हुआ और जब उसने दोनों संदूकों को बिलकुल ख़ाली पाया, तब केवल, "हाय! मेरी जो कुछ जमा-पूंजी

थी, वह सभी गई ! ” इतना कहकर वह ज़मीन में गिर पड़ा, और बेहोश होगया ! उसकी ऐसी दशा देखकर ब्रह्मचारी मुसकुराकर यह कहता हुआ वहांसे चला कि, ‘खूब हुआ ! अब तू यहीं पड़ा पड़ा अपने दलील-दस्तावेज़ों के लिये रोया कर ! मगर अफसोस ! कल से इतनी मेहनत उठाई, पर यहांसे एक फूटी कौड़ी भी हाथ न लगी ! खैर ! अब चलकर उसी चंडूल से कुछ झसैं ! साला बेईमान, बड़ा शैतान है !!! ’ इत्यादि ।

आठवां परिच्छेद

" रंग बदलत नित नए नए !"

"भगवन्तौ जगन्नेत्रे, सूर्याचन्द्रमसावपि ॥
पश्य गच्छत एवास्तं नियतिः केन लङ्घ्यते ॥"

(दण्डिनः)

मानिक कितनी देर तक उस तहखाने में बेसुध पड़ा रहा, यह न जान सका, पर जब उसने आंखें खोलीं तो अपने को तहखाने के बाहर कुवां-वाली खुली जगह में पाया; और जब अपनी आंखों के सामने एक ही रूप-रंग के दो ब्रह्मचारियों को खड़े देखा, जिनमें एक की मुश्कें कसी और दूसरा खुले हाथों था, तब तो उसके अचरज का कोई ठिकाना ही न रहा! वह बार बार आंखें मल मल कर दोनों ब्रह्मचारियों को देखता और मन ही मन सोचता था कि, 'यह क्या बात है! क्या मैं सपना देख रहा हूं!'

परन्तु उसे देर तक इस उलझन में उलझे रहना न पड़ा और उन दोनों ब्रह्मचारियों में से एक ब्रह्मचारी ने, जिसके हाथ-पैर खुले थे, आगे बढ़ और मानिक को उठाकर गले लगाया और कहा,—"प्यारे, मानिक! कहो बात क्या है? तुम्हारी मोसी की चिट्ठी पाकर हम यहां पहुंचे, पर ज्यों हीं ऊपरवाली छत से नीचे उतरना चाहते थे कि अपने सामने बरबराते हुए इस बहुरूपिये को हमने देखा, जिसने हमारा ही स्वांग रचा है और जो चोरों की तरह इधर-उधर देखता भालता यहांसे भागा जाता था!"

मानिक इस नये ब्रह्मचारी की विचित्र बातें सुनकर चकरा गया और (नये ब्रह्मचारी से) बोला,—"आज की विचित्र बातों ने

मेरी समझ पर ऐसा परदा डाल दिया है कि कुछ आगा पीछा नहीं सूझता ! इन बेढंगे, किन्तु मतलब से भरे हुए तमाशे का दिखलाने वाला कौन है ? जब तक मैं इसे अच्छी तरह न समझूंगा कि आप-दोनों में असली ब्रह्मचारी कौन है, तब तक आपकी किसी बात का जवाब न दूंगा । "

नए ब्रह्मचारी ने हंसकर कहा,—"अच्छी बात है। हम भी यही चाहते हैं कि जिसमें असली और नकली अलग अलग कर दिए जायं, जिससे तुम यह समझ लो कि दोनों में कौन आदमी विश्वास करने योग्य है, और यह नकली ब्रह्मचारी किस शैतान का बच्चा है!"

इतना कहकर नए ब्रह्मचारी ने दूसरे ब्रह्मचारी को जमीन पर पटक कर उसका पावं भी कस कर बांध दिया। फिर कुवें से पानी भर कर वे चाहते थे कि उसके मुखड़े को धो डालें, पर यह न होसका। क्योंकि एकाएकी दस-बारह आदमी, जिनके चेहरे पर जालदार रूमाल बंधे थे, और हाथ में नंगी तलवारें थीं, धड़धड़ाते हुए पहुंच गए और चट नकली ब्रह्मचारी के हाथ पैर का बंधन काटकर उसे अपने संग ले रफूचक्कर हुए !

बेचारा घबराया हुआ बालक मानिक और ब्रह्मचारी,—दोनों देखते ही रह गए, पर कुछ बन नहीं पड़ा ! और फिर उन हट्टे-कट्टे हथियारबंद लुटेरों का ये बेचारे कर ही क्या सकते थे ! कुशल इतनी ही हुई कि उन डाकुओं ने मानिक या ब्रह्मचारी के ऊपर किसी तरह का जोरजुल्म नहीं किया !

डांकुओं के जाने पर ब्रह्मचारी ने कहा,—"यह सारी बदमाशी उसी निमकहराम दीवान की है ! हत्यारे ने सर्वस्व तो ले ही लिया, फिर भी, अभी तक वह हरामजादा जान नहीं छोड़ता !"

मानिक,—"मैं आपकी बातों का जवाब तब तक कुछ भी नहीं दे सकता, जब तक आप अपने असली ब्रह्मचारी होने का पूरा पूरा प्रमाण न दे लें । "

ब्रह्मचारी,—"सबसे बढ़कर तो एक यही प्रमाण है कि जो नकली ब्रह्मचारी था, उसे उसके साथी उठा ले गए, और दूसरा प्रमाण गिरजा की चीठी है।"

यह कहकर उसने गिरजा की चीठी मानिक के हाथ में दे दी। उसने अच्छी तरह उलट-पलट-कर वह चीठी देखी और अक्षर पहिचाने; फिर वह ब्रह्मचारी के पैरों पर गिर, फूट-फूट कर रोने लगा।

ब्रह्मचारी की आंखों से भी आंसू टपकने लगे। उसने मानिक को उठाकर गले लगाया, उसका आंसू पोछा और कहा,—"बेटा! धीरज धरो! धीरज और संतोष से बढ़कर कोई चीज़ नहीं है। पाजी रामलोचन के पाप का भार पूरा होगया है, अब उसके सत्यानाश होने में बहुत विलंब नहीं है। गिरजा कहां है?"

"स्वर्ग में"—इतना कहकर मानिक फिर रोने लगा। इस समय ब्रह्मचारी ने भी थोड़ी देर तक रोने में उसका साथ दिया। फिर आप ही आप चुप होकर मानिक को भी चुप कराया।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे, फिर ब्रह्मचारी ने पूछा,—"कहो, इधर कौन कौन से नए नए उपद्रव खड़े हुए?"

मानिक,—"अब मैं इस अभागे घर में कोई बात अपनी जबान से न निकालूंगा। चलिए गंगाकिनारे बैठकर सब बातें कहूंगा।"

ब्रह्मचारी,—"मानिक! विपत्ति ने तुम्हें इसी उमर में अग्रसोची बना दिया! अच्छी बात है, चलो। मैदान में किस तरह कोई हमलोगों की बातें छिपकर सुनैगा।"

इतना कहकर और मानिक को साथ ले ब्रह्मचारीजी खंडहर के बाहर निकले और गङ्गातीर पहुंचकर ऐसी जगह जा जमे कि जहां पर कोई तीसरा आदमी किसी तरह छिपकर किसी भांति कोई बात न सुन सकै।

ब्रह्मचारी के जाने पर एक कालासा आदमी खंडहर से निकला
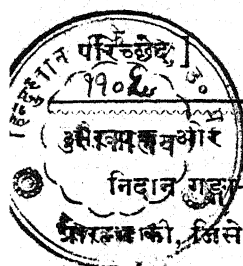
[illegible] ओर चला गया !

निदान गङ्गा-किनारे मानिक ने अपनी रामकहानी कहनी आरम्भ की, जिसे ब्रह्मचारीजी ध्यान देकर सुनते और चारों ओर देखते भी जाते थे ।

मानिक ने रास्ते में सुकुमारी का मिलना, पेड़ देख कर सुकुमारी का चिहुंकना, भण्डारघर और पेड़ की बात अधूरी छोड़ सुकुमारी के आग्रह से उसके घर जाना, पानीवाली कोठरी में बैठे बैठे बगलवाली कोठरी में दो आदमियों की बातें सुनना, फिर लौट कर अपनी मौसी की बुरी दशा देखना, उससे तालियों और दोनों सन्दूकों का भेद पाना, फिर उसके मरते ही नकली ब्रह्मचारी का आना, बुढ़िया को फूंकना, सबेरे लौटकर उस नकली ब्रह्मचारी के साथ सब तालियों को निकाल तहखाने में जाना, वहां खाली सन्दूक देखकर अचेत होजाना; इत्यादि कह सुनाया !

ब्रह्मचारी ने बड़े ध्यान से सब बातें सुनीं और कहा,—"क्या तुमने उस नकली ब्रह्मचारी से भी ये बातें कही थीं ?"

मानिक,—"हां, सब कुछ कहा था; मैं क्या जानता था कि वह कंबख़्त स्वांग बनकर छलने आया है !"

ब्रह्मचारी,—"यह अच्छा नहीं हुआ, और बेचारी सुकुमारी के लिये तो बहुत ही बुरा हुआ ! ख़ैर, किया क्या जाय, अब तो सब बात ही बिगड़ गई ! अच्छा देखा जायगा ।"

मानिक,—"हाय ! बेचारी सुकुमारी पर कोई भारी आफत आया चाहती है ! हाय ! मेरा सर्वस्व तो जा ही चुका है, यदि मेरे प्राण देने से भी वह आज किसी तरह इस आफ़त से बच सकै, तो मैं हर तरह से अपनी जान उसपर निछावर करने को तयार हूँ ।"

ब्रह्मचारी,—"घबराने से काम न चलैगा । अब बहुत सोच-समझ कर कोई काम करना पड़ैगा । (कुछ सोचकर) और देखो,

एक चूक और भी हुई! नीचे से ऊपर तक सारा खंडहर खुला पड़ा है, ताला लगाना भूल गए!"

मानिक,—"आग लगे, खंडहर में! गुरूजी! सब तो जल गया, अब क्या ईंट-पत्थर में ताला लगाया जायगा!"

ब्रह्मचारी,—"सो तो ठीक है, पर झटपट चलकर दो काम और कर लेने चाहिएं; एक तो कुएं में से ताबीज निकालना बहुत आवश्यक है, दूसरे तहखाने में ताला लगाना।"

मानिक,—"तहखाने में ताला लगाने से अब क्या प्रयोजन है?"

ब्रह्मचारी,—"क्या तुम्हें यह नहीं मालूम है कि तहखाने में एक सुरङ्ग है, जो दीवान रामलोचन की खजानेवाली कोठरी में जाकर मिल गई है; हमें इस बात का पूरा निश्चय है कि किसी तरह उसने गिरजा की चतुराई का पता पाया होगा और भीतर ही भीतर आकर सब कागज़ों को वह निकाल लेगया होगा!"

मानिक,—"सुरङ्ग का हाल तो मैं कुछ भी नहीं जानता, क्यों कि मौसी ने इस बारे में कुछ भी नहीं कहा था! और क्या आपको इस बात का भरोसा है कि आप सुरङ्ग की राह से रामलोचन के घर जाकर उन कागज़ों को पा लेंगे? गुरूजी! रामलोचन बड़ा धूर्त है, उसके पेट से खाई रकम का निकालना असम्भव नहीं तो सहज भी नहीं है।"

ब्रह्मचारी,—"सहज है, पर अभी उसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। देख लेंगे कि रामलोचन कितने पानी का आदमी है!"

मानिक,—"सुरङ्ग का हाल, जो आपने कहा, इससे सुकुमारी की उस बात का भी कुछ अर्थ लगता है, जो उसने भंडारघर के बारे में कही थी; पर उस पेड़वाला भेद अभी तक समझ में नहीं आया?"

ब्रह्मचारी,—"हां, पेड़ का रहस्य तो अभी तक हमारी समझ

में भी नहीं आया! खैर, देखा जायगा।"

मानिक,—"मेरे भाग्य में जितना लिखा है, उतना ही होगा। अब आप नहाइए, क्यों कि सांझ होने में अब देर नहीं है; फिर जो इच्छा हो, सो कीजिएगा।"

ब्रह्मचारी,—"और तुम्हारे मुंह में भी तो आज एक दाना नहीं गया! तुम भी नहा लो, फिर चलकर जो कुछ करना है, उसे आज ही से प्रारम्भ कर देंगे।"

मानिक,—"मुझे तो भूख नहीं है; आप नहाइए और चलकर कुछ भोजन कीजिए।"

ब्रह्मचारी,—"आखिर, तुम लड़के ही तो हो, भला भूखे रहने से क्या लाभ होगा?"

इतना कहकर ब्रह्मचारी ने मानिक को भी जोरावरी नहवाया और आपने भी स्नानकर संध्या-पूजा किया। दीया बलते बलते दोनों खण्डहर की ओर लौटे और आकर कुछ फल-फलहारी, जो ब्रह्मचारीजी अपने साथ लाए थे, दोनों ने मिलकर खाया।

प्यारे पाठकों! आपलोगों ने इतना तो अवश्य जान लिया होगा कि सुकुमारी के बाप का नाम दीवान रामलोचन और मानिक की मौसी का नाम गिरिजा था।

नवां परिच्छेद

"हाय दुख दूनो दीन दई !"

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ,
　　विफलत्वमेति बहु साधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्त्तुरभू-
　　न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥"

(माघस्य)

आज पन्द्रह दिन से सुकुमारी और मानिक की भेट नहीं हुई है! एक दूसरे का रत्ती भर हाल नहीं जानता कि किस पर क्या बीती! न तो मानिक ही अपनी बीती सुकुमारी के कानों तक पहुंचा सका और न सुकुमारी ही कोई हाल मानिक से कहला सकी। पन्द्रह दिन की गहरी जुदाई ने दोनों के कलेजे पर कैसी कड़ी चोट पहुंचाई होगी, इस बात को वेही भली भांति समझ सकते हैं, जिन्होंने दुःख और घोर बिपद के समय में अपने प्रेमी से धीरज पाने के बदले जुदाई की पीर सही होगी!

मानिक पर जो कुछ बीती, उसका थोड़ा सा हाल हम पिछले परिच्छेदों में लिख आए हैं, आज केवल उन्ही बातों को हम लिखेंगे जो पन्द्रह दिन के भीतर हुई हैं—

ब्रह्मचारी ने, तहखानेवाली संदूकों में से जो कागज-पत्तर चोरी गए थे, उनका बहुत पता लगाया, पर कुछ फल न निकला। सुरङ्ग का दर्वाज़ा, जो तहखाने में था, या जिस दर्वाज़े से भीतर ही भीतर दीवान रामलोचन की गुप्त कोठरी में जाने की राह थी,

वह भीतर से ईंटों से चुन दिया गया था। इस बात का पता तब लगा, जब ब्रह्मचारी ने किवाड़ को कुल्हाड़ी से टुकड़े टुकड़े कर डाला ! ईंटों को ढाहकर सुरंग के भीतर जाना व्यर्थ समझ तहखाना बन्द कर दिया गया और कुएं वाला डब्बा, जिसमें मानिक का तावीज था, ब्रह्मचारी ने किसी जगह छिपा रक्खा, जिसका भेद मानिक को भी नहीं मालूम हुआ। फिर ब्रह्मचारी ने उस पीपल के पेड़ और रामलोचन के घराऊ भेदों की खोज करनी प्रारम्भ की, पर दस-बारह दिन सिर पटकने पर भी कोई ऐसी बात हाथ न आई, जो मानिक को लाभ पहुंचाती। मानिक ने भी रामलोचन के घर की गली की बहुत फेरी लगाई, पर न तो सुकुमारी के दर्शन हुए और न कोई ऐसा मौक़ा हाथ लगा, जिससे और कुछ मतलब निकलता या सुकुमारी ही का कुछ हाल मिलता। एक दिन मानिक ने भीतर जाना चाहा, पर ड्योढ़ीदारों ने यह कहकर भीतर जाने न दिया कि, 'दीवान साहब ने आपको इस मकान के अन्दर पैर रखने की मनाही की है।' इतना सुन मानिक फिर भीतर न गया और इस बात से उसके दिल पर कैसा घाव लगा होगा, यह केवल मानिक ही के कलेजे से पूछना चाहिए ! जिस दिन मानिक को दरबानों ने रोका, उस दिन से उसने फिर दीवान रामलोचन के घर की ओर पैर न बढ़ाया, पर सुकुमारी के लिये उसका जी बहुत घबराने लगा। एक बात इधर और ऐसी पेचीली होगई, जिससे मानिक की घबराहट और भी बढ़गई। वह बात यह है कि आज दो दिन से ब्रह्मचारी का पता नहीं है ! आधी रात के समय किसी खटके की आवाज़ सुनकर वे उठे और हाथ में लट्ठ ले छत पर जाने लगे। मानिक ने बहुत मना किया कि, 'आप आधी रात के समय अकेले न जाइए, कहीं बैरी के जाल में न फंसना पड़े।' पर ब्रह्मचारी ने कुछ न माना और मानिक को धीरज दे ऊपर चढ़ गए। दो घंटे तक मानिक ने

ब्रह्मचारी का आसरा देखा, पर वे न लौटे, इधर मानिक भी ऊंघने लगा और धीरे धीरे गहरी नींद में सोगया। जब उसकी नींद खुली, तब डेढ़ घंटा दिन चढ़ चुका था। मानिक ने ब्रह्मचारी को न देख खण्डहर में चारों ओर खोजना आरम्भ किया, पर कहीं पता न लगा। डेढ़ पहर दिन चढ़े तक, मानिक ने ब्रह्मचारी को सुई-डोरे की तरह खोजा, पर उनका कुछ पता न लगा। जब मानिक ऊपर छत पर चढ़ने लगा, तो सीढ़ी की बगलवाली भीत पर नजर पड़ी; उसने देखा कि, 'कोयले से ब्रह्मचारी के हाथ के लिखे हुए केवल चार अक्षर हैं,—

"फंस गए !!!"

ये मानिक के कलेजे के घाव पर नोन का काम करने के लिये काफी थे! यद्यपि वे अक्षर रात को अंधेरे में कोयले से बड़ी जल्दी में खींचकर लिखे गए थे, पर मानिक के चित्त ने पूरा विश्वास कर लिया कि ये ब्रह्मचारी ही के हाथ के लिखे हुए अक्षर हैं। मानिक ने समझा कि, 'दीवानजी की यह भी एक टेढ़ी चाल है!' इन्हीं सब सोच-बिचारों ने पहर भर से जादे मानिक को "सन्न" कर दिया। न जाने वह कब तक उसी तरह सोच में डूबा रहता, पर किसीने उसके हाथ को खींचा, जिससे वह चौंक उठा और आंख खोलकर उसने देखा कि, 'सामने एक बुढ़िया खड़ी रोरही है!'

मानिक थोड़ी देर तक भैचक सा बुढ़िया की ओर देखता रह गया, और फिर आप ही आप बोल उठा—"अरी दुलरी! तू आई! कह, सब राजी-खुशी हैं? तू रोती क्यों है?"

जो बुढ़िया अभी रोती हुई आई है, उसका नाम दुलरी है; और इतना और भी क्यों न कह दें कि इसीने सुकुमारी को गोदी खिलाकर इतनी बड़ी किया और उसीकी भेजी हुई यह आई है।

थोड़ी देर तक तो दुलरी मानिक की दशा देख रोया की, फिर मानिक के पूछने पर बोली,—" हां ! रायजी ! सब कोई अच्छी तरह हैं, पर बेचारी सुकुमारी की दशा बहुत बुरी होरही है ! स्कूल जाना बंद हो गया, ऊपर से उतरने की भी बड़ी मनाही है, किसीसे बोलने, किसीसे बात करने भी वह नहीं पाती, घर की दाई-मजूरनी भी बाहर नहीं निकलने पातीं। बेचारी सुकुमारी न खाती है, न पीती है, रो रो कर उसने अपनी ऐसी बुरी गत बना डाली है कि चिन्हाई नहीं देती। बेचारी की मां की भी कोई दर, कोई बात नहीं है, न जाने दीवानजी के मन में क्या समाई है ! हाय, घर को ऐसा सांसतघर बना डाला है कि हवा भी बाहर की भीतर और भीतर की बाहर नहीं आने जाने पाती !"

मानिक ने बड़े ध्यान से दुलरी की बातें सुनी और एक लंबी सांस लेकर वह कहने लगा,—"दुलरी ! हाय ! मेरे ही पीछे बेचारी सुकुमारी के कोमल शरीर ऐसे ऐसे कठोर दुःख सह रहे हैं ! मेरे जीने पर धिक्कार है कि मेरे कारण एक भोली-भाली सुशील लड़की ऐसी-ऐसी सांसत सहे और मेरे किए उसकी कुछ भी भलाई न होसके ! हा ! परमेश्वर ! अब तू मुझे मौत देदे।"

दुलरी ने मानिक का आंसू पोंछकर कहा,—" राजा, रोवो मत, भगवान को याद करो, वेही बड़े बड़े संकटों से दीन-दुखियों को उबारते हैं। देखो, मैं तुरंत जाऊंगी; कहीं कोई दुश्मन देख लेगा तो गजब हो जायगा ! बड़ी बड़ी मुशकिलों से पंदरह दिन में आज घात लगी कि किसी तरह लुक छिप-कर यहां तक पहुंच सकी। लो, यह सुकुमारी ने पुरजा दिया है, इसे पढ़ो; मैं जाती हूं।"

इतना कहकर दुलरी मानिक के हाथ में एक टुकड़ा केले का पत्ता देकर चली गई ! मानिक ने बहुत कहा, पर वह फिर ज़रा न ठहरी।

उसके जाने पर मानिक ने सुकुमारी का पुरजा कलेजे और आंखों से लगाया, फिर खोल कर देखा! उसमें अधिक कुछ नहीं लिखा था, केवल दो चार पंक्तियां थीं, जिन्हे हम नीचे लिखे देते हैं,—

"जहां तक होसके, जलदी अपने प्राण लेकर भागो। मैं, हो सका तो आठ बजे पुल के पास मिलूंगी। जो मैं न भी मिल सकूं, तो भी मेरा आसरा न देखना, भागजाना।"

पाठक! देखा! यही सुकुमारी का पुरजा था! इसके पढ़ने से मानिक की क्या दशा हुई, यह बात हम उन लोगों को किसी तरह नहीं समझा सकते, जिन्होंने मानिक के दुःख का चौथाई दुःख भी अपने कलेजे पर न झेला हो!

मानिक ने कई बार उस पत्र को पढ़ा, उसकी लिखावट, उसका भाव और उसके ढंग देखकर मानिक का कलेजा एक दम बैठ गया! उसने देखा कि केले के पत्ते पर सुई से कई लकीरें ऐसी जलदी से लिखी गई हैं, जिन्हें देखने से सुकुमारी की पराधीनता, घबराहट और भय साफ़ साफ़ झलकते हैं!

मानिक ने चिट्ठी को कलेजे से लगा कर आप ही आप कहा,—"हा! प्यारी, सुकुमारी! मेरे कारण तुम ऐसी नज़रबंद करके रक्खी गईं कि कलम-दावात और काग़ज़ भी तुम्हारे लिये सपना होगया! हाय! मेरे लिये तुम्हारे ऊपर ऐसी कड़ाई हुई और इसे देख-सुन-कर भी मेरे पापी प्राण न निकले!"

घंटों तक मानिक उसी तरह चुपचाप सोच में डूबा हुआ बैठा रहा। फिर आप ही आप धीरज धर कर उठा और गङ्गा किनारे आकर नहा, धो, और दो चार घूंट जल पी, टहलने लगा। टहलते घूमते वह उस जगह आया, जहां गिरिजा की चिता भस्म की गई थी! वहां पर खड़ा हो थोड़ी देर तक मानिक रोया किया, फिर एक लंबी सांस लेकर दूसरी ओर मुड़ा। संझातक वह गङ्गाकिनारे

टहलता रहा । सूरज डूबने पर उसने एक डोंगी खोल ली और उसपर सवार हो, डांड़ लेकर बहाव की ओर (डोंगी) छोड़दी । थोड़ी देर पीछे उसने डोंगी फेरी और जहांसे डोंगी खोली थी, वहां पर आ और डोंगी बांध पुल की ओर पैर बढ़ाया । खंडहर से सौ डेढ़-सौ क़दम दूर चढ़ाव की ओर पुल था । मानिक किनारे ही किनारे पुल के पास पहुंचा और चारो ओर देख-भाल कर पुल के नीचे, जहां पहिले कई बेर सुकुमारी से मिल चुका था, छिप कर बैठ रहा ।
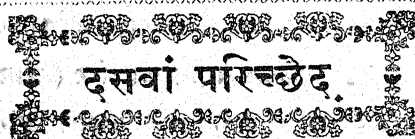
दसवां परिच्छेद.

"तुम बिन दूजो कौन पियारी !"

"अमृतस्येव कुण्डानि, रत्नानामिव राशयः ।
रतेरिव निधानानि, निर्मिताः केन योषितः ॥"

(कुमारपालितस्य)

न जाने कितनी देर तक मानिक पुल के नीचे आंखें बन्द किए बैठा रहा ! किसीने आकर जब उसका हाथ पकड़ा, तब वह चिहुंक उठा और उसने देखा कि, 'सामने सुकुमारी खड़ी है !' उसे देखते ही मानिक झोंक से उठ खड़ा हुआ और सुकुमारी को उसने गले लगा लिया ! फिर क्या था ? दोनो प्रेमी विरहव्यथा से व्याकुल तो थे ही, मिलते ही आंसुओं की धारा से वियोग की आग बुझाने लगे ! थोड़ी देर तक यही हाल रहा, फिर एक ने दूसरे के आंसू पोंछे और दोनो बैठ कर बातें करने लगे,—

सुकुमारी,—"मौसी को क्या हुआ था ?"

मानिक,—"पांच-चार दिन बुख़ार आया था । मैं क्या जानता था कि इतनी जलदी मैं अनाथ हो जाऊंगा ! उस दिन तुम्हारे पास से लौट कर देखा कि उनके काग़ज़ पूरे होने में अब देर नहीं है !"

सुकुमारी,—"हाय ! पन्द्रह-बीस दिन पीछे तुम्हें देखा ! प्यारे ! तुम तो चिन्हाई ही नहीं पड़ते !"

मानिक,—"प्यारी ! यही बात मैं तुमसे पूछने को था । ख़ैर, इधर जो जो आफ़तें मेरे सिर आईं, उन्हें कहने लगूं तो कई दिन बीत जायंगे; किन्तु हा ! तुम्हारे दुःख का जब मैं ख़याल करता हूं, जो मेरे लिये तुम्हें भोगने पड़ते हैं, तो यही जी चाहता है कि मैं अपनी जान दे दूं !"

सुकुमारी,—"हां हां ! ठीक बात है, जिसमें मेरे दुःख की मात्रा पूरी होजाय ! मुझे तो कोई दुःख है नहीं, केवल तुम्हारी विपता देख सुन कर मेरी जान निकल रही है ! हाय ! मेरे प्राण देने से भी तुम्हारा दुःख कम हो तो मैं अभी दे डालूं ! "

मानिक,—"प्यारी ! क्यों नाहक मेरे लिये तुम इतना कष्ट सहती हो ! मुझे भूल जाओ और अपने पिता के कहे में चलो । "

सुकुमारी,—'तुम्हें तो प्यारे ! उसी दिन भूलूंगी, जिस दिन यह शरीर चिता पर राख होजायगा; और कहा तो मैं सबका मानूं, पर अनीति नहीं सही जाती; हाय ! तुमने उनका क्या बिगाड़ा है, जो वे तुम्हारा सर्वस्व लेकर भी तुम्हारे खून के प्यासे होरहे हैं !"

मानिक,—"सुकुमारी ! उनका क्या दोष है, यह सब मेरे दिनों का फेर है ! "

सुकुमारी,—"अच्छा, मैं बहुत देर तक नहीं ठहर सकती; तुम्हारे लिये मेरी जान जाय, तो भी मैं तयार हूं, पर मेरे लिये तुम्हारे ऊपर कोई बला न आवे, इसलिये, प्यारे ! मानिक ! अब तुम क्या करोगे, यह बताओ, और जहां तक होसके अपनी रक्षा करो । "

मानिक,—"कौन उपाय बताऊं, सारा देश तो शत्रु होरहा है ! तुम जो कहो, सो करूं । "

सुकुमारी,—"देखो ! तुम्हारे ऊपर कई बदमाश लगाए गए हैं, इसलिये मैं चाहती हूँ कि कुछ दिन तक तुम ऐसी जगह रहो, जहां दुश्मनों का कोई चारा न चले । प्यारे ! मैं तुम्हारी जुदाई सह लूंगी, पर सच मानो, तुम्हारे ऊपर भगवान न करे, कोई आफ़त आगई, तो मैं फिर प्राण न रक्खूंगी । "

मानिक,—"क्या कोई बात नई हुई है ? "

सुकुमारी—"नई बात क्या होगी ! सुनो प्यारे, तुम्हारे ऊपर जो कुछ बीती, सो सब ब्रह्मचारीजी से सुन चुकी हूँ । मेरी मां

सब जान गई हैं, पर बेचारी लाचार हैं; उनका भी कोई बस नहीं चलता कि कुछ कर सकें—"

मानिक,—(जलदी से) "ब्रह्मचारीजी से कहां और कब भेंट हुई ?"

सुकुमारी,—"दो दिन हुए, वे भी पिताजी के जाल में फंस गए हैं, पर उनके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो। आज निश्चय मैं उन्हें कैद से छुड़ा दूंगी। उन्हीं की जबानी तुम मेरा या मेरी मां का हाल सुनना, जो कुछ इधर हम-दोनों पर बीती है।"

मानिक,—"सुकुमारी! आज तुमने हमें बेदाम मोल लेलिया!"

सुकुमारी,—"और दाम देकर कब खरीदा था! अच्छा सुनो, तुम किसी तरह पटने चले जाओ। मां ने यह चीठी दी है (चीठी देकर) मेरे मामा तुम्हें अच्छी तरह रक्खेंगे। वहीं थोड़े दिन रहो, फिर भगवान कोई न कोई उपाय ज़रूर कर देंगे, जिसमें तुम अपनी सब गई हुई संपत्ति को पाओगे।"

मानिक,—(चीठी लेकर) क्या तुम मां के जान में आई हो ?"

सुकुमारी,—"नहीं, वह दुलरी के हाथ चीठी भेजती थीं, मैंने उससे चिट्ठी लेली। आज बाबूजी भागलपुर गए हैं, इसलिये मैं मां से कह-सुन-कर किसी तरह लुक-छिप-कर गङ्गा नहाने के बहाने तुम्हें देखने चली आई।"

मानिक,—"पर रात को तुम अकेली आईं, यह अच्छा न किया!"

सुकुमारी,—"नहीं, अकेली नहीं आई हूं; दुलरी पास ही घाट-किनारे बैठी है। अच्छा, यह लो,—(एक पोटली देकर) इसे पास रक्खो।"

मानिक,—(लेकर) "यह क्या है ?"

सुकुमारी,—"इसमें डेढ़ सौ रुपए हैं, इन्हें जतन से रखना, काम आवेंगे। तुम नाव ठीक करो, बच्चू तुम्हारे साथ जाकर पहुंचा

आवेगा और कोई कानोकान भी न जानेगा ! जब तुम राजी-खुशी पहुंच जाओगे, तो फिर कोई क्या करेगा !"

मानिक,—"सुकुमारी ! तुमने इतने रुपए कहां पाए ?"

सुकुमारी,—"मुझे जब जब मिले, मैंने खर्च न करके जमा किए, जो आज काम आए !"

मानिक,—नहीं, सुकुमारी ! मैं न लूंगा। इन्हीं का कोई गहना बनवालो ।"

सुकुमारी,—"मुझे गहने-कपड़े की कमी है ? सच पूछो तो मेरे सच्चे गहने तो तुम हो, फिर मुझे थोथे गहनों से क्या मतलब !"

मानिक,—"हाय ! मुझे तो फूटी कौड़ी का भी ठिकाना नहीं है; तुम्हारे रुपए खर्च होजायंगे तो मैं कहांसे भरूंगा ?"

सुकुमारी,—"वाह जी ! मैंने क्या कोठी खोली है ? मैं क्या तुम्हें कर्ज़ देती हूं ? समझो कि तुम्हारे ही रुपए आज तक मेरे पास धरे थे, वे ही आज तुम्हारी थाथी तुम्हें लौटाए देती हूं।"

मानिक,—"—(सुकुमारी का हाथ थामकर) 'मेरी प्यारी ! मैं और कोई बात से नाहीं नहीं करता ! हाय ! आज मेरे कलेजे ने बड़ी कड़ी चोट खाई है ! जिस आशा-रूपी लता को इतने दिनों से प्रेम का जल दे सींच सींच कर अपने हृदय में रोपा था, आज वह विपत की बयार से उखड़ना चाहती है ! प्यारी सुकुमारी ! क्या कहूं, आज मेरे हृदय में प्रलय की आग भभक उठी है, उसका बुताना बड़ा कठिन है ! मुझे मालूम होता है कि ऐसी आग में मेरा हृदय जल-भुन कर राख होजायगा ! सुकुमारी ! सारा देश जिसे खाने के लिये मुंह बाये खड़ा है, दरिद्रता ने जिसे कौड़ी का तीन कर दिया है और लगातार विपत्ति ने जिसे घुला डाला है, उसकी आशा क्या और भरोसा क्या ! ! !

मानिक की आंखों में आंसू भर आए, उसने ठहर कर फिर कहना प्रारंभ किया,—" किन्तु सुकुमारी ! मेरी जीवनप्राण

सुकुमारी ! मैं बावन होकर चांद पकड़ना चाहता हूं! भला यह मेरा मूरखपन नहीं है तो क्या है! भला जो अनहोनी है, वह कभी हो सकती है? जो साध मेरे दिल में समाई है, वह कभी पूरी होसकती है! पर यह मन ऐसा अमाना है कि किसी तरह समझाने-बुझाने पर भी नहीं मानता। हाय! मैं कैसे अपने चित्त को ठंढा करूं और कैसे अपने हृदय की लगी को बुझाऊं?"

कहते कहते मानिक की आंखें फिर डबडबा आईं, उसने फिर कहा,—"सोचा था कि एक न एक दिन मैं अवश्य सुखी होऊंगा पर हाय! मेरे भाग्य में सुख नहीं है। प्यारी, तुम मेरी आशा छोड़ो और सुखी होवो, मैं देश छोड़ूंगा और यहां रहकर तुम्हारे सुख की राह में कांटा न होऊंगा।"

सुकुमारी की आंखों से भी आंसू बहने लगे। वह किसी तरह अपने को सम्हाल कर कहने लगी,—"प्यारे, हाय! तुम्हारी बे-सिर-पैर की बातों का अर्थ क्या है? इसके पहिले तो तुमने कभी ऐसी कठोर बातें नहीं कही थीं! हाय! मेरी बातों का तुमने उलटा मतलब लगाया? प्यारे मानिक! मैं क्या तुम्हें देश को सदा के लिये त्यागने कहती हूं? या यों समझो कि मैं क्या तुम्हें छोड़ती हूं? हाय! तुम्हें छोड़कर या तुम्हारे देश त्याग करने से मैं सुखिया होऊंगी? इस संसार में यदि मेरे सुखी होने की कोई चीज है तो वह 'तुम' हो। हाय! प्राण निकल जाने पर क्या कोई सुखी होसकता है? मानिक! तुम्हीं मेरे जीवन-प्राण हो, तुम्हें छोड़ने पर मेरे प्राण रहेंगे, ऐसा तुम्हें विश्वास है? मैं तो इसलिये तुम्हें यहांसे टल जाने के लिये कह रही हूं कि जिसमें तुम्हारे ऊपर किसी तरह दुश्मनों की पहुंचाई हुई आंच न पहुंचे। और क्यों प्यारे! क्या तुम्हारा मन इतना थोड़ा है कि मुझे त्याग देगा? यदि ऐसा हो तो मुझे तज दो; फिर देखना कि सुकुमारी की,—तुम्हारी प्यारी सुकुमारी की—क्या दशा होती है!!!"

कहते कहते सुकुमारी की हिचकी बंध गई, और गला रुंध गया। मानिक की भी वही दशा थी। वह सुकुमारी का आंसू पोंछ कर बोला,—"प्यारी! तुम्हें मैं त्याग करता हूं? हाय! ईश्वर जानता है कि मेरे तन में, मन में, नैनों में और रोम-रोम में तुम्हीं समाई हुई हो! जब तक एक बाल भी मेरा राख होने से बचा रहेगा, तुम्हें नहीं त्याग करूंगा। पर क्या करूं, बड़ी लाचारी है! तुम्हारे पिता मेरे खून के प्यासे होरहे हैं! तुम उन्हीं की लड़की हो! भला यह कब होसकता है कि वे तुम्हारा हाथ मुझे पकड़ा देंगे, या मैं तुम्हें अपनी बनाऊंगा!"

सुकुमारी,—"सो सब ठीक है, पर क्या मेरा हाथ तुमने नहीं पकड़ा है, या मैं अभीतक तुम्हारी नहीं होचुकी हूं? सुनो मानिक! ब्याह तो एक लोकाचार है; वह हो, या न हो, पर जब तक सुकुमारी के देह में प्राण रहेंगे, तब तक यह तुम्हारी ही है। यह तुम निश्चय समझो कि चाहे लोकाचार से मैं तुम्हारी न हो सकूं, पर जबतक दम में दम है, यह हाथ दूसरे के हाथ में न जायगा। प्यारे मानिक! तुमने मुझे क्या समझा है? तुम कहीं रहो, मैं सब तरह तुम्हारी ही हूं। मानिक! याद करो, बालेपन से तुम्हारे साथ रही, संग खेली, संग बढ़ी, दिनरात तुम्हारी छाया बनी रही; अब भला जीते जी तुम्हें छोड़ सकती हूं? मैं अपना तन, मन, धन, सब तुम्हें दे चुकी। तुम्हारी जुदाई मुझसे नहीं सही जायगी, यह मैं जानती हूं, पर फिर भी जैसे प्रपंच रचे जा रहे हैं, उनसे मैं चाहती हूं कि जहां तक होसके, जलदी तुम मुंगेर का मुंह काला करो! मानिक! मैं तुम्हें चाहती हूं, तभी तुम्हारी जुदाई को सहना जी से चाहती हूं, पर तुम्हारा छिन भर भी यहां रहना नहीं चाहती। तुम पटने जाओ। मैं यहां का पता-ठिकाना ठीक करके चिट्ठी लिखूंगी, तब जवाब लिखना। ब्रह्मचारीजी के लिये सोच न करना, उनको छुड़ाने का जिम्मा मैं लेती हूं। प्यारे, अब

मुझे बिदा करो और आज ही रात को तुम यात्रा करो । ”

मानिक,—“सुकुमारी, जैसा तुम कहती हो, मैं वैसा ही करूंगा; किन्तु हा ! तुम्हारे पिता ने दूसरे बर के हाथ तुम्हे सौंप दिया तो मेरी क्या दशा होगी ? ”

सुकुमारी,—“तुम पागल हो; कुलवंती लड़कियों का कहीं दो बेर ब्याह होता है ! ”

मानिक,—(जलदी से) “क्या कहा ? ”

सुकुमारी,—“कुछ नहीं ! अब प्यारे ! मुझे छुट्टी दो, रात जादे गई, मुझे घर से निकले देर भी बहुत हुई ! ”

मानिक,—“सुकुमारी ! मैं किस मुंह से तुम्हें जाने कहूं ! हा ! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हमारी-तुम्हारी यही आखिरी भेंट है ! मेरा मन मुझसे कह रहा है कि, ‘अब सुकुमारी की और तेरी देखा-भाली कभी न होगी’ ! ”

सुकुमारी,—(रोकर) “हा ! मैंने संसार में, अपने जान, आज तक किसीका जी नहीं कुखाया है कि जिसके बदले में नारायण बालेपन ही में मेरा सब सुख मिट्टी में मिला देंगे ! सुनो, प्यारे ! तुम जब, जिस जगह, जैसी दशा में रहो, मैं हर तरह से केवल तुम्हारी ही हूं; इस बात का तुम विश्वास करो । तुम यदि प्रेम से मुझे छठें-छमांसे दो अगुल का पुरजा भी लिखोगे, बारह बरस पर भी छिनभर के लिये दर्शन दोगे, तो मैं उतने ही में अपना धन्य भाग्य समझूंगी, उतनेही में मैं सब कुछ भर पाऊंगी और उतने ही में सब तरह अपने को सुखी मानूंगी । राजकुमार ! मैं तुम्हें चाहती हूं, कुछ धन-दौलत की भूखी नहीं हूं । तुम; भगवान करे, राजा होकर राजकन्या से ब्याह करो, तौ भी मैं तुम्हारे चरणों की दासी बनी रहूंगी । और यदि परमेश्वर न करे, तुम्हें दाने-दाने के लिये संसार में द्वार-द्वार भटकना पड़े, उस दशा में भी मैं तुम्हारी ही अनुचरी बनी रहूंगी; और यदि संसारी धर्म

छोड़कर तुम पहाड़ों की कन्दराओं में बैठकर कंद-मूल-फल-अहार करके तप करोगे, तब भी मैं तुम्हारी ही होकर अपना शरीर सुखा सुखा कर तुम्हारी सेवा कर सतीलोक जाऊंगी । प्यारे मानिक ! मैं अज्ञान-बालिका हूं, इससे अधिक और किस तरह अपना कलेजा चीर कर तुम्हें दिखाऊं ! "

इतना कहते कहते रोती हुई सुकुमारी उठ खड़ी हुई, मानिक भी खड़ा होगया; दोनों रोते रोते गले गले मिले और वहां पर आए, जहां गङ्गा के किनारे दुलरी अपने लड़के बेचू के साथ बैठी हुई थी।

सुकुमारी को देखते ही दुलरी खड़ी होगई और बोली,—"बीबीरानी ! अब चलो, बड़ी देर हुई; कुछ ठिकाना है ! जो मैं जानती कि तुम आधी रात कर दोगी, तो कभी मैं तुम्हें न लाती; खैर अब चलो । "

सुकुमारी,—"दुलरी ! घर चल कर, जितना चाहे, उतना लड़ लीजो (बेचू से) बेचू ! तू तयार है न ? अभी इसी समय पटने जाना पड़ेगा । "

बेचू० । "हजूर ! हमलोग ताबेदार हैं, जो हुकुम हो, सोई करेंगे । "

मानिक,—"अरे यह क्या हुआ ?" इतना कहकर वह जोर से चिल्ला उठा ।"

उसकी घबराहट-भरी आवाज सुनकर सुकुमारी घबराकर बोल उठी—"एँ क्या हुआ ?"

मानिक,—(उंगली से दिखाकर) "वह देखो ! कैसा उंजाला है ?"

यह सुनकर सब के सब उसी ओर देखने लगे ।

बेचू,—"यह तो सरकारी गढ़ के पास मालूम देता है !"

मानिक,—"गढ़ क्या, उसे अब खण्डहर कहो ! अरे, यह देखो,

कितने बड़े बड़े लुक उड़ने लगे !"

सुकुमारी,—(आश्चर्य से) क्या उसी खंडहर में आग—"

मानिक,—" हां, दिखाई तो ऐसा ही देता है ! ख़ैर, चलो, देखा जाय !"

निदान, सब कोई घबराए हुए जलदी जलदी पैर बढ़ाते हुए किनारे ही किनारे चलने लगे। जब गढ़ थोड़ी दूर रह गया, तो सब कोई ठहर गए और देखने लगे कि आग का पहाड़ धक-धक कर रहा है !

सुकुमारी,—(रोवासी आवाज़ से) " हाय, यह तो तुम्हारे गढ़ ही में—"

मानिक,—"प्यारी ! अच्छा हुआ; मेरा सर्वस्व तो जा ही चुका था, एक यह गढ़ बचा था, आज ईश्वर ने बड़ी दया की, जो इसे मटियामेट कर मेरे चित्त से इसका अभिमान भी दूर किया !"

सुकुमारी कुछ कहा ही चाहती थी कि एकाएक पांच-सात आदमी चेहरे पर जालदार रूमाल डाले, और लट्ठ लिए हुए टूट पड़े और बरजोरी सुकुमारी को पालकी में बंद कर और दुलरी की मुश्कें बांध चलते बने। बेचू ने छेड़छाड़ की और एक पर लट्ठ भी चलाया, पर साथ ही दूसरे के लट्ठ से गिरकर वह अचेत होगया। वे लोग इतनी जलदी अपना काम कर चल दिए कि मानों पहिले ही से उन लोगों ने अपनी घात लगा रक्खी थी ! किन्तु मानिक से कोई कुछ भी नहीं बोला।

ग्यारहवां परिच्छेद.

"जग में असरन-सरन मुरारी !"

"येन शुक्लीकृता हंसाः, शुकाश्च हरितीकृताः।
चित्रीकृता मयूराश्च स ते वृत्तिं विधास्यति॥"

(व्यासस्य)

थोड़ी देर तक मानिक भैचक सा खड़ा रह गया, फिर अंजुली में गङ्गाजल लाकर बेचू के ऊपर छिड़कने और उसके मुंह में चुलाने लगा।

कुछ देर में उसने आंखें खोलीं और दोचार अंगड़ाई ले उठकर मानिक से बोला,—"दीवानजी की करनी तो आपने देखी न? अब क्या इच्छा है? पटने चलियेगा, या बैठे-ठाले अपने तईं उस बेईमान निमकहराम के जाल में फंसाइयेगा?"

मानिक,—"पहिले तुम यह तो कहो कि तुम्हें गहरी चोट तो नहीं लगी?"

बेचू,—"नहीं, मुझे कुछ ऐसी चोट नहीं आई है कि मैं कई दिनों तक बेकाम बैठा रहूँ। आप यह कहिए कि अब क्या करना चाहिए?"

मानिक,—"जब तक मैं यह अच्छी तरह न जान लूं कि 'सुकुमारी पर छापा मारनेवाले कौन थे और उस बेचारी पर उन दुष्टों के कारण क्या क्या बीती,' तब तक मैं कुछ भी नहीं कह सकता कि क्या करूंगा, या कहां जाऊंगा!"

बेचू,—"क्या आपने इतना भी नहीं पहिचाना कि वे लोग दीवान रामलोचन के आदमी थे! जो आदमी चीन्हे हुए हैं, वे मुंह ढकने से कभी छिप सकते हैं?"

मानिक,—"चाहे तुमने उन लोगों को पहिचान लिया हो,

और तुम्हारा कहना सच भी हो, पर यह तो और भी पेचीली बात हुई ! आश्चर्य नहीं कि बेचारी सुकुमारी पर पूरी कड़ाई की जाय और उस सबूत से उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़े !"

बेचू,—"इन बातों को आप छुट्टी के वक्त अकेले में बैठकर सोचा करिएगा ! इस समय जो कुछ करना उचित जान पड़े, सो करिए, या मुझे आज्ञा दीजिए। देखिए मेरी मां को भी वे हरामजादे बांध ले गए, पर मैं उसके लिये कुछ भी सोच नहीं करता; क्योंकि वह बड़ी चतुर है, आप अपना छुटकारा कर लेगी; इस लिये मैं फिर भी यही कहता हूं कि अब आप जहां तक होसके, जलदी मुंगेर का मुंह काला करिए; फिर जो उचित जान पड़े, सो कीजिएगा।"

मानिक,—"तुमने जो कुछ कहा, सब ठीक है; पर इस समय मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। हाय ! जब मेरे कारण सुकुमारी के प्राणों पर आ बनी, तो मैं ही जीकर क्या करूंगा ? (लंबी सांस लेकर) अच्छा, चलो, एक बेर चलते-चलते फुंकते हुए अपने इस खण्डहर या गढ़ को तो आंखें भर कर देख लूं ! आख़िर तो बिधना ने मुझे हर तरह से बरबाद कर ही दिया, फिर चिन्ता क्या है ! (पैर बढ़ाता हुआ) दीवानजी आइए, मेरा सिर हाज़िर है, काटकर अपना हिया ठंढा करिए; पर सुकुमारी के सुकुमार अंगों पर हाथ न उठाइए, क्योंकि अपराधी मैं हूं, उस बेचारी का कुछ भी दोष नहीं है।"

यों आप ही आप बकता और रोता हुआ मानिक अपने खण्डहर के पास पहुंचा। बेचू भी उसके पीछे था। मानिक ने देखा कि खंडहर को चारों ओर से भयानक आग ने इस तरह से घेर लिया है, जैसे वह ज्वालामुखी पहाड़ को घेरती है। उस समय यही जान पड़ता था, मानो पृथ्वी को फोड़कर कोई आग का पहाड़ निकला हो ! उसकी लौर बीस बीस हाथ ऊंची उठती और चारों ओर भी बीस बीस पचीस पचीस हाथ दूर तक अपनी ज्वाला फैला रही

थीं ! मानिक उस आग की फेरी देने और गढ़ के तीन ओर घूम कर आंसू बहाने लगा, क्यों कि चौथी ओर गङ्गा का किनारा गढ़ से इतना सटा हुआ था कि उधर आंच के कारण जाना कठिन था। रात आधी से जादे जा चुकी थी; एक तो अन्धेरी रात, दूसरे चारों ओर से सन्नाटे ने अपना पूरा दख़ल जमा रक्खा था। ऐसे समय में आग ने ऐसा भयानक रूप धारण किया था, जिसका हाल मानिक के निराश और चुटीले दिल से पूछना चाहिए !

अंधेरे में आग और भी चमकीली दिखाई देने लगी, पर दीवानजी की कृपा के कारण कोई भी मरता-जीता आग बुझाने या सहायता करने न आया। आप ही आप आग ने विराट रूप धारण किया और फिर आप ही आप वह धीरे धीरे धीमी होने लगी।

गढ़ के तीन ओर घूमते घूमते मानिक ने देखा कि, 'एक ओर दो चार बोझे फूंस के पड़े हैं !' और एक जगह देखा कि, 'एक मट्टी के तेल का कनस्तरा भी पड़ा है ! '

उसे देखकर मानिक के जी का भाव बदल गया, और उसने बेचू को फूंस और मट्टी के तेल का कनस्तरा दिखला कर कहा,—" देखो, बेचू ! मुझे जिस बात का संदेह था, उसका निश्चय होगया ! यह आग भी दीवानजी की दयादृष्टि से ही लगाई गई है!"

बेचू,—(देखकर) " ठीक है, भगवान की बड़ी दया है कि अभी तक आपके रोंगटे उस हत्यारे की आंच से बचे हुए हैं; इसलिये अब यही उचित है कि अपने भाग्य पर भरोसा रखिए और जहां तक होसके, जलदी यहांसे निकल चलिए; फिर जो राम करेंगे, सो होगा ।"

मानिक बेचू की बातो का जवाब दिया ही चाहता था कि चार सवार घोड़ा फेंकते हुए आ पहुंचे। उनमें से जो सवार सबके आगे था, और जो उन सभों का सरदार मालूम होता था, वह

घोड़े से उतर पड़ा और एक बेर मानिक को सिर से पैर तक निहार कर उसने आग के पहाड़ की ओर देखा और फिर मानिक की ओर मुड़ कर बोला,—" तुम्हारा नाम क्या है ? "

मानिक उन सवारों को,–विशेषकर उनके सरदार को, देखकर चकपका गया था, कि, 'ये शत्रु हैं कि मित्र !' पर उसका मन यही कहता था कि, 'ये शत्रु कभी नहीं हो सकते, क्योंकि इनमें शत्रुओं के से कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते !'

जो हो, पर मानिक ने किसी तरह अपने जी को कड़ा करके जवाब दिया,—" मेरा नाम मानिक है। "

सरदार,—"क्या स्वर्गवासी महात्मा राजा हीराचंद के लड़के तुम्ही हो ? क्या तुम्हारे ही बारे में ब्रह्मचारी रामानंद ने लाट साहब के यहां अर्ज़ी भेजी थी ?"

मानिक,—" जी हां, मैं ही उन स्वर्गवासी पिता का अभागा संतान हूं, पर यह मुझे नहीं मालूम कि ब्रह्मचारीजी ने कब अर्ज़ी भेजी ! "

सरदार,—" मैं तुम्हारे पिता का पुराना मित्र हूं, मुझे तुम अपना पूरा हितकारी समझो और मेरे साथ आओ। बाक़ी सब बातें पीछे होंगी। "

मानिक,—(सरदार के पैरों पर गिरकर) " आप मेरे पिता की जगह हैं, आज से मैं आपके शरण में आया। "

सरदार,–(मानिक को उठा और गले लगाकर) "सबके शरण नारायन हैं। तुम कुछ चिंता न करो, लाट साहब तुम्हारा उचित न्याय करेंगे और जबतक तुम अपने पिता की सब संपत्ति न पाओगे, तब तक हमारे घर को अपना समझना "

मानिक,—" जो आज्ञा, मैं अभी चलता हूं। (बेच्चू से) तुम अब जाओ। यह चीठी और रुपये सुकुमारी को लौटा कर और उसकी खोज खबर लेकर यदि उचित हो तो कलकत्ते आना।

(सरदार से) मेरा आदमी अगर कलकत्ते आवे, तो क्योंकर आपके घर तक पहुंचेगा ?"

सरदार,—" कलकत्ते में जिससे पूछा जायगा, वही सेठ अमीचंद का पता बता देगा।"

फिर मानिक ने सब बातें समझा-बुझा-कर बेचू को रुपये और चीठी दे बिदा किया और आप सेठ अमीचंद के साथ चला।

एक सवार घोड़े से उतर पड़ा, उस पर मानिक सवार हुआ और सब के सब गङ्गा किनारे किनारे पुल की ओर जाने लगे।

पाठक यह बात आपलोगों को याद होगी कि आज मानिक के मुंह में एक दाना भी अन्न का नहीं गया है!

बारहवां परिच्छेद.

"बात यह कीनी नाहिं भली !"

'खलः सत्क्रियमाणोऽपि, ददाति कलहं सताम्।
दुग्धधौतोऽपि किं याति, वायसः कलहंसताम्॥'

(नीतिविवेकस्य)

यह हम लिख आए हैं कि जिस दिन सुकुमारी मानिक से भेंट करने के लिये रात के समय पुल के पास गई थी, या जिस दिन मानिक के टूटे-फूटे गढ़ में आग लगी थी, उस दिन सुकुमारी का बाप रामलोचन घर पर न था, किसी काम के लिये भागलपुर गया था। मानिक और सुकुमारी किसी तरह न मिलने पावैं, इसकी पूरी ताकीद करके वह हुसैनी को एक तरह दोनों के पहरे पर मुकर्रर कर गया था। यदि रामलोचन घर होता तो सुकुमारी कभी इतना साहस न करती। उसने अपने पिता के न रहने से निडर होकर मानिक से मिलने का विचार किया और सब ठीकठाक करके घड़ी-डेढ़ घड़ी रात गए दुलरी को साथ ले अपनी मां से गङ्गा नहाने का बहाना कर पिछवाड़े की राह से जाकर मानिक से भेंट की। जब वह दुलरी के साथ अपने घर से निकल रही थी, तभी एक नौकर ने देख लिया और उसकी मां से कह गया कि, 'बीबी रानी रात के वक्त न जाने कहां दुलरी के साथ जा रही हैं।' इस पर सुकुमारी की मां ने जवाब दिया कि, 'ठीक है, वह मुझसे पूछ कर नहाने गई है।' मालिकनी का जवाब सुनकर नौकर ने समझा कि ठीक है। फिर जब वह जाने लगा तो सुकुमारी की मां ने उससे कहवाया कि, 'जब तक सुकुमारी नहा कर न आवे, तब तक पिछवाड़े का द्वार

खुला रहै, और गनेस वहीं रहै । "

नौकर का नाम गनेस था, उसने मालिकनी का हुक्म सुनकर वैसाही किया और पिछवाड़े का दरवाजा खोले वह बैठा रहा । जब रात के दस बजे तो हुसैनी चारों ओर घूम-घूम कर चौकसी करने और सदर द्वार बंद करा बाग़ की देखा भाली करने चला । बाग़ के दक्खिन कोने पर ज़नाने महल का पिछवाड़ा पड़ता था, वहां पहुंच कर उसने गनेस को दरवाजा खोले बैठे बैठे ऊंघते पाया ।

यह देख उसने डांटकर पूछा,—"क्यों रे गनेसवा ! इतनी रात को ज़नाने महल, और उसके साथ ही बाग़ की खिड़की के दरवाज़े क्यों खुले हैं ? "

हुसैनी की डपट से गनेस की पिनक दूर हुई, उसने आंखें मल कर अपने सामने कई आदमियों के साथ लालटेन लिये हुए हुसैनी को देखा और दुबारे उसकी डांट सुनकर बोला,-"बीबीरानी नहाने गई हैं, इससे द्वार खुला है । बहूजी का हुकुम है, इसीलिये द्वार खोले मैं बैठा हूं । "

हुसैनी,—(घबराकर) "क्या कहा ! बीबीरानी रात के वक़्त नहाने गई हैं ! "

गनेस,—"हां साहब ।

हुसैनी,—"ख़ूब ! बहूजी ने सब चौका लगा दिया ! दीवान साहब को मैं क्या जवाब दूंगा ! रात के वक़्त पिछवाड़े की राह से गङ्गा नहाने जाना मतलब से खाली नहीं है ! न जाने बहूजी की समझ पर क्या परदा पड़ गया, जो रात को अकेली लड़की को एक दाई के साथ जाने दिया ! अगर ऐसा ही था तो सिपाही प्यादे साथ कर दिए जाते । इस तरह छिपकर जाने में ज़रूर कोई मतलब है । "

हुसैनी बकझक कर ही रहा था कि महल से एक दाई निकली और उसने गनेस को पुकार कर कहा कि, 'दो घण्टे से

ज़ादे होगए, अभी तक बीबीरानी नहाकर नहीं आईं; सो किसी को लालटेन लेकर भेजो; देखो, क्या सबब है, जो इतनी देर हुई!"

हुसैनी,—"क्या दो घंटे से ज़ियादा देर हुई?"

दाई,—"हां कहती तो हूं।"

हुसैनी,—"अच्छा बहूजी से कहदो कि मैं खुद जाता हूं।"

इतना कह, कई प्यादे और पालकी साथ ले मसाल बलवाकर हुसैनी सुकुमारी की खोज को निकला।

इधर जब दाई ने सुकुमारी की मां से कहा कि, 'बीबीरानी को खोजने हुसैन खां गए हैं;' तो उसने सिर पीट डाला और कहा कि, 'गज़ब होगया! हुसैनी बड़ा बदकार है, वह ज़रूर सब हाल सुकुमारी के बाप से कहेगा और न जाने सुकुमारी की क्या दशा होगी! मुझ पर चाहे जो बीते, पर बेचारी लड़की के ऊपर कोई आफत न आवे! हाय! मुझीसे भूल हुई, जो मैंने रात को अकेली जाने दिया। खैर अब तो जो होना था, सो होचुका।'

हुसैनी अपने सिपाहियों के साथ मुंह पर जालदार रूमाल डाले खोजता हुआ ठीक उसी वक्त सुकुमारी के पास पहुंचा था, जब वह मानिक के साथ उसके जलते हुए गढ़ के पास पहुंच चुकी थी। उसी जगह वह पकड़ी गई और पालकी में बंद कर के घर लाई गई।

घर पहुंचकर हुसैनी ने एक दाई को बीच में खड़ीकर उसीके ज़रिए सुकुमारी की मां से बात-चीत करनी प्रारम्भ की।

हुसैनी जो कुछ कहता था, उसे इतने ज़ोर से, कि आड़ में खड़ी हुई सुकुमारी की मां अच्छी तरह सुनलेती थी; और वह जो कुछ कहती, उसे मज़दूरनी हुसैनी से कहती थी।

हुसैनी ने कहा,—"आप यह बात बखूबी जानती हैं कि सरकार का बीबीरानी और मानिकचन्द के बारे में कैसा कड़ा हुक्म है! तो फिर क्या समझकर आपने बीबीरानी को रात के वक्त अकेली

उस लौंडे के पास जाने की इजाज़त दी ? ये सब हाल जब सरकार के कानों तक पहुंचेंगे, तो कैसी आफ़त आएगी ?"

सुकुमारी की मां,—"खैर यह मुझसे भूल हुई, अब ऐसी बात कभी न होने पावेगी। अबकी बार तो आप मोफ़ करें और ऐसा उपाय करें, जिसमें सरकार के कानों तक यह बात न पहुंचने पावै।"

हुसैनी,—"यही तो मुश्किल है। आप खुद सोचिए कि जिस बात को मुंगेर के सैकड़ों आदमी जान गए, वह मेरे छिपाए क्योंकर छिप सकती है ?"

सुकुमारी की मां,—"क्या आपको मेरे कहने पर, या बच्ची सुकुमारी पर तनिक दया नहीं आती ? और क्या आप यदि इस बात को छिपाने की कोशिश करें, तो यह नहीं छिप सकती ?"

हुसैनी,—"आप ऐसा न कहैं; मैं कुरान छूकर क़सम खाता हूं कि मैं अपने मुंह से पहिले सरकार के रूबरू इस बात को न ज़ाहिर करूंगा; मगर जो वे खुद इस हाल को किसी ग़ैर शख्स से सुनकर मुझसे सच्चा हाल दर्याफ्त करेंगे, तो उस वक्त मैं क्या जवाब दूंगा ?"

सुकुमारी की मां,—"मुझे इतनी समझ नहीं है कि मैं आपको इस बारे में समझा सकूं, पर केवल इतना ही कहती हूं कि जैसे हो सकै, यह बात आपको छिपानी पड़ेगी। सुकुमारी अभी निरी नादान है, और मानिक के साथ यह बच्चेपन से खेलती आती है। यदि इस समय यह उससे जाकर मिली भी, तो इसमें हानि क्या हुई ?"

हुसैनी,—"हानि क्या हुई ? इस बात का जवाब तो फ़क़त सरकार ही दे सकते हैं! खैर, मैं इसके छिपाने की कोशिश करूंगा, मगर अभी पूरा वादा नहीं कर सकता।"

सुकुमारी की मां,—" अच्छा, जाइए, जो आपसे बने सो कर

लीजिए। जो सुकुमारी निर्दोष है तो आदमी के बिगाड़े उसका कुछ भी नहीं होसकता। हां नारायण को उस बच्ची की ओर से आंख न फेरनी चाहिए।"

यह कहती हुई वह महल के अन्दर चली गई। मज़दूरनी भी दर्वाज़ा बंद करके भीतर चली गई और हुसैनी बड़बड़ाता हुआ अपनी बैठक में चला आया। आकर उसने इस बात की क़सम खाई कि "दीवानसाहब के आनेपर सबके पहिले आज की वार्दात की ख़बर उन्हें मैं ही दूंगा।"
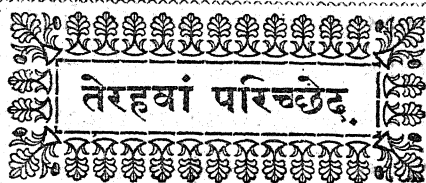
तेरहवां परिच्छेद.

" सुनु मन, एक राम रखवारो !"

" रावणो येन विध्वस्तो, रक्षितो हि विभीषणः ।
उद्धृता जानकी देवी, स रामो मम रक्षकः ॥ "

(श्रीरामदासस्य)

हुसैनी और अपनी मां की आपस में जो जो बातें हुईं, उन्हें छिपकर सुकुमारी ने सुना था। वह बेचारी जहां की तहां खड़ी-खड़ी रोती थी, इतने ही में उसकी मां वहीं पहुंची और बेटी का हाथ थाम कर अपने कमरे में लेगई।

वहां पहुंच कर दोनों जनी बैठीं, तब सुकुमारी से उसकी मां ने कहा,—" क्यों! बेटी! जो तुझे मानिक से मिलना था, तो मुझसे कहा क्यों नहीं? जैसे होता, मैं उसे यहीं बुलालेती। जिस राह से तू गई थी, उसी रास्ते से उसे बुलाती, और कोई कानों-कान भी कुछ न जानता। अब जो तेरे बाबूजी सुनैंगे तो क्या होगा? मुंआ हुसैनी बड़ा ही कमीना है, वह हत्यारा कभी चुपका न रहेगा और ज़रूर सब भंडाफोड़ करेगा!"

यह सुन सुकुमारी अपनी मां के पैरों पर गिर पड़ी और सुसुक सुसुक कर रोने लगी। तब उसकी मां ने उसे उठाया और उसके आंसू पोंछ कर कहा,—" अच्छा, रो मत; चुपकी हो जा। जो होगा, सो देखा जायगा। हां! यह तो बतला कि मानिक का क्या हाल है?"

सुकुमारी,—(रोती हुई) " अम्मा! अब मानिक से जीते जी देखाभाली न होगी। आज वह मुंगेर से बिदा हुए! अब न वह कभी यहां आवैंगे, और न मैं ही उनसे मिलने जाऊंगी; बस जो

कुछ था, वह आज पूरा होगया! यहां पर जो कुछ उनकी बची बचाई जमा-पूंजी थी, वह भी सब फुंक गई!"

सुकुमारी की मां,—(घबरा कर) "क्या कहा? क्या फुंक गई?"

इस पर सुकुमारी ने मानिक के घर में आग लगने और किसी मरते-जीते को उस आग के बुझाने के लिये न आने का पूरा-पूरा हाल कह सुनाया; जिसे सुन उसकी मां बहुत रोई; सुकुमारी भी चुपकी न रही!

थोड़ी देर में दोनों कुछ शांत हुईं, तब सुकुमारी की मां ने उससे पूछा,—"क्यों, मेरी चिट्ठी, जो कि दुलरी लेगई थी, उसके पास पहुंची? वह पटने जायगा न?"

सुकुमारी,—"हां, चिट्ठी उनको मिलगई। मैंने बहुत कुछ ऊंच-नीच समझा-बुझाकर आज ही मुंगेर छोड़ देने और पटने चले जाने के लिये उनसे कहा है; और बेचू को भी उनके साथ कर दिया है कि उन्हे पटने पहुंचा आवै।"

सुकुमारी की मां,—"बेचू को साथ करना बहुत अच्छा हुआ, इससे उसके पहुंचने की ठीक ठीक ख़बर भी मिल जायगी। पर, हाय! मैंने उस बच्चे के खर्च-बर्च के लिये तो कुछ भेजा ही नहीं! मेरी याद पर पत्थर पड़े! पचास अशर्फियां मैंने निकाल रक्खी थीं, कि चिट्ठी के साथ ही उसके पास भेज दूंगी, पर उसका भेजना भूलगई! अब क्या होगा? वह बेचारा कैसे पटने तक पहुंच सकैगा? उसके पास धरा क्या है? राह का खर्च भी तो उसके पल्ले नहीं है! पटने पहुंचने पर तो उसे किसी बात का दुःख न होगा, क्योंकि मैंने भैया को उसके बारे में बहुत कुछ लिख दिया है, पर राह के खर्च का काम अब कैसे चलेगा?"

ये सब बातें सुकुमारी सन्नाटा मारे हुई सुना की, पर यह उसने नहीं कबूला कि 'मैं अपने प्यारे को रुपए दे आई हूं, इसलिये उन्हें खर्च-बर्च की तकलीफ़ न होगी' फिर बोली,—"हां, खर्च-बर्च की

तो ज़रूर तकलीफ़ होगी, उनके पास है क्या ? "

क्यों पाठक! यह बात तो भोली सुकुमारी ने बिलकुल सच ही कही है न!?

सुकुमारी की मां,—"खैर, जो मरज़ी रघुनाथजी की! अच्छा, अब तू कुछ खा-पी-कर सो रह, रात जादे हुई।"

सुकुमारी,—"मैं कुछ न खाऊंगी, मुझे भूख नहीं है! यहां तो बड़ी गर्मी है। मैं दक्खिन ओर वाले कमरे में जाकर सोती हूं।"

सुकुमारी की मां,—(कुछ सोचकर) "अच्छा, जहां तेरा जी चाहे, वहां सोइयो, पर कुछ खा तो ले ?"

सुकुमारी,—"नहीं मैं कुछ न खाऊंगी।"

उसकी मां ने उसे बहुत समझाया, पर उसने कुछ न खाया और बाहर आकर दक्खिन-ओर-वाले कमरे में दिया बालने के लिये मज़दूरनी से कहा।

सुकुमारी के न खाने का असली भेद उसकी मां पर छिपा न रहा! भला, आज उसका प्यारा बिछुर गया है, इसलिये उस बेचारी के मुंह में अन्न कैसे धंसता ? निदान, बेटी के न खाने से मां ने भी कुछ न खाया और दीया बाले जाने पर सुकुमारी दक्खिन-ओर-वाले कमरे में चली गई और उसकी मां अपने कमरे में टहलने लगी और लंबी सांस लेकर आपही आप कहने लगी कि,—"प्यारी! सुकुमारी! हाय! कब भगवान तेरे ऊपर दया करेंगे ?"

सुकुमारी पलंग पर जा लेटी और दुलरी उसका पैर दबाती हुई धीरे-धीरे कहने लगी,—"बीबीरानी! अब क्या होगा ? यह रिजाला मीयां बड़ाही टुकड़हा है, सारी बातसरकारसे कहदेगा।"

सुकुमारी,—(क्रोध से) "कहदेने दे! देखूंगी कि मेरा कोई क्या करता है ? जब अपनी जान हथेली पर रखली, तो फिर डर किसका ?"

दुलरी,—(कांपकर) "पर, मेरी तो पूरी ख़राबी है!"

सुकुमारी (झुंझलाकर) "डर लगता हो तो यहांसे काला मुंहकर!"

दुलरी,—"हां, हां, अब तो ऐसे कहोहीगी! हां, गङ्गा नहाने चलने के लिये कैसी चिरौरी करती थीं, और अब काला मुंह कर चली जाने को कहते लाज तो न आती होगी!"

सुकुमारी,—(पैर से ठोकर मारकर) "तू चूल्हे में जा।"

दुलरी,—"तो ब्याह में बधाई कौन गावेगा?"

यह सुन सुकुमारी हंस पड़ी, और दुलरी ने फिर कहा,—"बीबी! मैं अपने लिये नहीं झींखती, मुझे तुम्हारा ही जादे ख़याल है! सरकार का गुस्सा तुम क्या नहीं जानतीं? उस दिन की चमोटी की मार को मैं याद करती हूं तो मेरा कलेजा दहल उठता है! इसी लिये कहती हूं, पर तुम मुझी को दुरदुराती हो!"

सुकुमारी,—"वे दिन गए! अब किसकी ताक़त है, जो मेरी ओर आंख उठाकर भी देखेगा! अब मैं बाबूजी से भी नहीं डरती, फिर मियां निगोड़े को मैं क्या समझती हूँ! वह कंबख़्त मेरा करेगा क्या? बस, जा, चुपकी होकर सोरह; मुझे भी नींद आती है। पैर छोड़!"

यह कहकर सुकुमारी ने अपना पैर खैंच लिया और दुलरी यों बड़बड़ाती हुई उठ खड़ी हुई कि,—"बुरा हो, हत्यारे का! रिजाले ने ऐसा कस कर मुझे बांधा था कि नस-नस टूट रही हैं सत्यानाश हो, निपूते का!!!"

सुकुमारी,—(मुसकुराकर) "अच्छा, इस वक्त चुपचाप सोरह, सबेरे बैंगन से सेंक दूंगी।"

इस बात पर दुलरी भी हंस पड़ी और जाकर एक ओर पड़ रही। बस, पड़ते ही वह मुर्दों से बातें करने लगी और उसकी नस-नस की गहरी चोट की गवाही उसके खुर्राटे देने लगे!

चौदहवां परिच्छेद.

"समैं पै बिगरी बात बनै !"

" अनुकूले सति धातरि,
 भवत्यनिष्टादपीष्टमविलम्बम् ।
पीत्वा विषमपिशम्भु—
 र्मृत्युञ्जयतामवाप तत्कालम् ॥ "
 (दृष्टान्तसमुच्चये)

रात आधी से ज़ादे जा चुकी है, चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है, केवल रह-रह-कर पहरेवालों की आवाज़ और कुत्तों के भूंकने के अलावे और कुछ सुनाई नहीं देता है, रात भी घोर अंधेरी अर्थात वैशाख मास की आमावास्या है । इस समय सारा संसार सुख की नींद में सो रहा है, पर बेचारी बिपत की मारी सुकुमारी की आंखों में आज नींद नहीं है ! न जाने आज उसकी भींगी हुई आंखों से, और नींद से, क्या तकरार हुई है कि वह सुकुमारी की आंखों में पैर रखना पसंद नहीं करती, और सुकुमारी की आंखें भी आज उसे अपने पास नहीं फटकने देतीं । उसे घंटों पलंग पर लेटे और करवटें बदलते बीत गए, पर नींद तो आज इधर अपना रुख ही नहीं करती थी ! लाचार, वह घबराकर उठ बैठी, और तरह तरह के उधेड़-बुन में लगे हुए अपने मन को सम्हालने लगी । थोड़ी देर में उसने अपने जी को किसी-किसी तरह ठिकाने किया और उठ कर कमरे में टहलना शुरू किया ।

उस कमरे के बाग़ की ओर-वाले सब दर्वाज़े खुले हुए थे और उनमें से कभी कभी हलकी हवा आकर एक ओर रक्खे हुए दीए

की टेम को झिलमिला देती थी, जिसकी झिलमिलाहट से सुकुमारी चिहुंक उठती थी, पर साथ ही दुलरी के, गाड़ी के चक्के की घर्घराहट के समान खुर्राटे को सुनकर सावधान होजाती थी।

टहलते टहलते उसकी चाल रुकी और वह पलङ्ग पर बैठकर आप ही आप यों कहने लगी,—"यद्यपि अभी मेरी कच्ची उमर है, जिसने संसार के उलट-फेर को, या उतार चढ़ाव को, कुछ भी नहीं जाना है, पर अब अपने दिल में से लड़कपन की कचाहट दूर कर इसे मज़बूत करना चाहिए; क्यों कि अब कड़ा कलेजा किए बिना काम न चलेगा।"

योंहीं वह, और भी न जाने क्या-क्या कहती, पर एक खटके की आवाज़ ने उसे चौंका दिया और वह चट उठकर जिधरसे वह आवाज़ आई थी, उसी ओर चली।

वह आवाज़ बाग़ में से आई थी, इस लिये वह उधर के दर्वाजे की ओर आकर खड़ी हुई; पर तुरन्त कुछ सोच-समझ-कर पीछे हटी और दीया बुझाकर फिर बाग़ की ओर सिर निकालकर झांकने लगी; पर गहरी अंधेरी के कारण कुछ भी न दिखलाई दिया थोड़ी देर तक वह यों ही सन्नाटा मारे बाग़ की ओर कान लगाए खड़ी रही, इतने ही में ठीक उसके कमरे के नीचे बाग़ में पत्ते की खरखराहट हुई, जिसे सुनते ही वह सावधान होगई और कान खड़ेकर, उस आहट की टोह लेने लगी। कुछ देर तक तो कुछ सुनाई न दिया, फिर फुसफुसाहट की आहट आई, जैसे कोई दो आदमी बहुत ही धीरे-धीरे बात-चीत करते हों!

यह दस्तूर है कि चाहे कोई कितना ही धीरे-धीरे बातें करता रहे, पर कुछ देर में वह बात इतनी स्पष्ट और साफ़ स्वरों में होने लगती हैं, कि फुसफुसाहट का सिलसिला टूट जाता है। यही कारण था कि थोड़ी देर पीछे सुकुमारी ने साफ़-साफ़ दोनों की कुछ-कुछ बातें सुनीं, पर वह बातें इतनी बेजोड़ और अधूरी थीं,

कि जिनका मतलब उसकी समझ में कुछ भी न आया! उसने जो कुछ सुना, उसे हम नीचे ज्यों का त्यों लिख देते हैं,—

एक,—"***न सही, पर जैसे हो, उससे मिलकर धीरज देना। बेचारी लड़की पर बड़ी आफ़त आया चाहती है***मुआं बड़ा क़ाफ़र है***उनका गुस्सा गज़ब का है***वह बहुत घबराय न***"

दूसरा,—"घबराओ मत***कलकत्ते पहुंच सका तो***बीच में कोई नई आफ़त न आ जाय***"

एक,—"***बगीचे की दीवार लांघकर जलदी भागो***"

दूसरा,—"***सही, लङ्का में एक आप ही विभीषण हैं***"

एक,—"भागो, भागो।"

दूसरा,—"जाते हैं, नारायण आपको इस उपकार का बदला दे***तो कल उसकी तलवार से मेरा सिर काटा जाता***"

फिर बात-चीत बंद हुई और पत्तों की खड़खड़ाहट की आहट आई। थोड़ी देर में फिर बाग़ में गहरा सन्नाटा छा गया!

थोड़ी देर तक तो सुकुमारी उसी तरह खड़ी रही, पर अपने कमरे में किसीकी आहट पाकर उसका कलेजा कांप उठा! अभी वह बाग़ में बात करनेवालों की बेजोड़ बातें सुन चुकी है, जिनसे यह नहीं ज़ाहिर होता था कि, 'ये लोग शत्रु हैं, या मित्र;' और अब अपने कमरे में किसीके आने की आहट पाकर उसके दिलपर ऐसी कंपकंपी पहुंची कि वह खड़ी न रह सकी और जहां खड़ी थी, वहीं थर्राकर बैठ गई! इतने में फिर उस कमरे में किसीकी आहट मालूम पड़ी! तब तो उसने बहुत ही पोढ़ा कलेजा करके कमर से दियासलाई निकाली और उसे चट-पट घिसकर बाला!

उंजाला होते ही उसने देखा कि, 'एक आदमी उसके पलंग के पास खड़ा है!'

सुकुमारी एक मर्द को अपनी सेज के पास खड़ा देखकर

चिल्लाया ही चाहती थी कि उस आदमी ने पास जाकर धीरे से अपना नाम बतलाया, जिसे सुनते ही उसकी घबराहट और डर दूर हुए; फिर दूसरी सलाई जलाकर उसने दीया बाला, और उस आदमी की ओर मुंह फेरा, जो कि सचमुच बेचू था !

सुकुमारी,—"तू यहां कहां ?"

बेचू,—(धीरे-धीरे सारा हाल कह, और चिट्ठी तथा रुपए वापस करके) "अब ताबेदार को क्या हुक्म होता है ?"

सुकुमारी,—(उसकी बातों से खुश होकर) "तू अभी कलकत्ते रवाना होजा । चिट्ठी मैं रखलेती हूं, सब हाल मां से कहकर यह (चिट्ठी) उन्हें दे दूंगी । ये रुपए लेता जा, इनमें से जो काम पड़े, सो खर्च करियो, या उन्हें जरूरत पड़े तो दे दीजो।"

बेचू,—"कुछ और संदेसा है ?"

सुकुमारी,—"और जो कुछ है, उसका हाल मैं चिट्ठी में लिखूंगी।

यह कहकर उसने हुसैनी और अपनी मां से जो जो बातें हुई थीं, वे सब बेचू से कह सुनाईं और फिर पूछा,—"तू यहां तक क्योंकर आया ?"

बेचू,—"बाग़ की दीवार लांघ और महल के पिछवाड़े से कमंद लगाकर आया । पहिले मैं मांजी साहब के कमरे में गया, पर वहां आपको या उनको न देखकर यहां आया । यहां अंधेरा देखकर मैंने बिचार किया था कि दीया बालूं, इतने में आपने खुद रौशनी की।

सुकुमारी,—(आश्चर्य से) "क्या मां अपने कमरे में नहीं हैं ?"

बेचू,—"जी नहीं।

सुकुमारी,—"तो वह इस आधी रात के समय गईं कहां ? अच्छा तू जा !

बेचू,—"मांजी साहब से पूछ लियाजाता तो अच्छा होता ?"

सुकुमारी,—"मैं कहती हूं कि नहीं ! इस वक़्त किसीसे पूछने का मौक़ा नहीं है । सुन, तू भी तो मेरे साथ था ? न जाने भूलकर या क्यों, हुसैनी तुझे छोड़ता आया था; पर अब अगर वह तेरी खोज पा लेगा तो बहुत बुरी तरह तेरे साथ पेश आवेगा; इसलिये अब जहां तक जल्द हो सके, तू यहांसे रफूचक्कर हो ! "

बेचू,—"जो हुकुम ! मेरी मां भी तो बांधकर लाई गई थी, उसका क्या***"

सुकुमारी,—"उसके लिये तू बेफ़िक्र रह । इस बात का मेरा ज़िम्मा है, जो इसका एक बाल भी बांका हो । (कुछ सोचकर) हां ! तूने बाग़ में किसीके साथ अभी कुछ बात चीत की थी ?"

बेचू,—(ताज्जुब से) "नहीं तो ? क्या हुआ ? "

तब सुकुमारी ने उस बात को मन ही में रक्खा और कहा,—"कुछ नहीं, मुझे धोखा हुआ होगा ! अच्छा अब तू जा । "

यह सुन बेचू ने सुकुमारी और अपनी मां दुलरी के चरण की धूल अपने सिर चढ़ाई और कमंद के ज़रिये से उतर कर वह बाग़ के बाहर होगया ।

पंद्रहवां परिच्छेद.

"कबहुं नहिं ऐसो होत सुन्यो !"

"अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
महापकारिणं शत्रुं क्षमन्ते स्वेन तेजसा ॥ "

(व्यासस्य)

पाप-विनाशिनी गंगा के दहिने किनारे पर मुंगेर बसा है। किनारे पर राजा हीराचंद या उनके एक-लौते लड़के मानिकचंद का किला उजाड़ खंडहर की दशा में पड़ा है। आज उसीमें दीवान रामलोचन ने आग लगवाकर और भी उसे मटियामेंट कर दिया, और मानिक उसी फुंकते हुए गढ़ के लिये दो बूंद आंसू गिराकर सुकुमारी से बिदा हो सेठ अमीचंद के साथ अंगरेज़ी सरकार की शरण में गया।

गंगा के ऊपर वह वीरान किला था, पर सदर फाटक उसका दूसरी ओर अर्थात दक्खिन-मुंह का था, जिसका अब नाम-निशान भी नहीं है। वहांसे उत्तर लगभग पांच सौ क़दम बढ़ने पर दीवान रामलोचन के आलीशान मकान का पिछवाड़ा पड़ता था, जिस ओर बहुत बड़ा बाग़ पक्की चार-दीवारी के अंदर था, पर सदर फाटक उसका भी दूसरी ओर अर्थात दक्खिन-रुख़ का था। सदर फाटक से थोड़ा इधर ही फाटक के ठीक सामने एक बहुत ही बड़ा और पुराना पीपल का पेड़ था, जिसको देखकर एक दिन सुकुमारी चिहुंक उठी थी, और उसके हाल को मानिक से पूरे तौर पर नहीं कहने पाई थी। उसी पेड़ के इधर-उधर आमबारी या छोटे छोटे पेड़ों के जंगल लग गए थे, और लोगों ने आराम करने के लिये वहां पर लताओं के कुञ्ज बना रक्खे थे। इन्हीं कुंजों में से एक कुंज में एक दिन मानिक के साथ घुस कर सुकुमारी

पीपल के पेड़ का हाल, जो कुछ कि वह जानती थी, मानिक को सुनाने लगी थी, पर एकाएक अपने हिरण्यकश्यप-सरीखे बाप की आहट पाकर उसने उस किस्से को अधूरा ही छोड़ दिया था, जिसे हमारे पाठक भूले न होंगे।

आज, अर्थात उसी बैशाख की अमावास्या की आधी रात के समय, जिस समय कि सुकुमारी ने बाग़ में किसी की बात चीत के बाद बेचू को अपने सामने देखा और फिर उसे मानिक के पास जाने के लिये बिदा किया था; उस पीपल के पेड़ के नीचे अंधेरे में गड़ी जाती हुई एक औरत सिर से पैर तक स्याह चादर ओढ़े इधर उधर देखती हुई टहल रही थी, इतने ही में एक खटके की आवाज़, जो कि उस पीपल के पेड़ के ऊपर से आई थी, सुन कर ऊपर ताकती हुई वह खड़ी होगई! इतने में पेड़ के ऊपर से तीन बार चुटकी की आवाज़ आई, जिसके जवाब में उस औरत ने भी तीन बार चुटकी बजाई और तब उस पेड़ पर से दो आदमी नीचे उतर पड़े! उन दोनों में एक तो चालीस पैंतालीस बर्ष का गठीला जवान था और दूसरा बूढ़ा था; पर वह इतना दुर्बल, सुस्त और मुरझाया हुआ था कि उसकी उम्र का ठीक ठीक अंदाज़ा करना उस समय कठिन था।

उन दोनों के नीचे उतर आने पर वह औरत उस काहिल बुड्ढे के पैरों पर जाकर गिर पड़ी, जिसे बड़े स्नेह से बुड्ढे ने उठाया और कहा,—"बेटी! तू मेरी जीवन देनेवाली और इस यमलोक सरीखे कैदख़ाने से छुड़ानेवाली माता की भांति पूजी जाने योग्य है! यदि परमेश्वर कभी वह दिन दिखलावेगा कि मैं तेरा किसी तरह का उपकार करने लायक अपने को समझूंगा, तभी जानूंगा कि मेरा फिर से इस पृथ्वी पर जन्म लेना सफल हुआ।"

औरत,—"आप मेरे पिता के समान हैं, मैं आपकी लौंडी हूं

और जो कुछ सेवा आज मुझसे आप की होसकी है, इसके बदले में मैं एक भीख चाहती हूं! आशा है कि आप इस दुखिया की एक अदनी आर्ज़ू पूरी करने से कभी मुंह न मोड़ेंगे।"

बुड्ढा,—"हां! हां! मेरे प्राण देने पर भी जो तेरा कुछ भला होसकता हो तो मैं सिर आंखों से तैयार हूं। बतला, तू क्या चाहती है?"

औरत,—"अपना सोहाग! बस, सिवा इसके और यह दासी कुछ नहीं चाहती।"

बुड्ढा,—(उसकी बातों से सन्नाटे में आकर) "खूब! अच्छा, ऐसा ही होगा। बेटी! तू सतीकुल में धन्य है, तू रावण सरीखे पति के हितचाहने वाली मंदोदरी के समान है। अच्छा, ऐसा ही होगा।"

यह सुनते ही वह स्त्री दौड़कर फिर बुड्ढे के पैरों पर गिरकर उसके पवित्र चरणों को अपने आंसुओं से धोने लगी। बुड्ढे ने उसे उठाया और धीरज देकर दूसरे साथी के साथ गङ्गातट की ओर कूच किया। वह औरत भी दीवान साहब के बाग़ की ओर जाकर दीवार लांघ ज़नाने महल में चली गई!

सोलहवां परिच्छेद.

"दया करु नेकु दई के निहोरे ।"

"अचिन्तितानि दुःखानि, यथैवायान्ति देहिनाम् ।
सुखान्यपि तथा मन्ये, दैवमत्रापिरिच्यते ॥"

(व्यासस्य)

सदर फाटक से घुसने पर एक ड्योढ़ी के अन्दर दीवान रामलोचन का बाहरी कमरा, दफ़्तरखाना और अगल-बगल नौकर-चाकर और बाहरी लोगों के रहने के घर क़िने से बने हुए थे। उसके बाद दूसरी ड्योढ़ी के अन्दर दीवानजी की खास बैठक, और उसके बाद तीनमंज़िला ज़नाना महल था। महल के पिछवाड़े, अर्थात् दक्खिन ओर पक्की चार दीवारी के अन्दर बहुत बड़ा बाग़ था, जिसमें बड़े बड़े कुञ्जभवन, सरोवर, बावली और कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक, दोमंजिली बारहदरी थी, जो हमेशः बंद रहा करती थी, उसके चारों ओर बराबर दिन रात पहरा पड़ा करता था, और हुसैनी प्रायः वहीं पर रहा करता था; पर उस बंद मकान के अन्दर क्या था, इसका हाल ज़रा ठहरकर मालूम होगा।

यह बात ऊपर लिख आए हैं कि सुकुमारी जब दुलरी को साथ लेकर बाग़ की ओर के दक्खिन ओरवाले घर में सोने के लिये चली गई थी, उस समय उसकी मां उदासी के साथ अपने कमरे में टहलती और रह रहकर बाहर निकल चारों ओर की कुछ आहट लेती जाती थी। योंहीं उसे घंटे भर से अधिक बीते, और इसी अरसे में चारों ओर सारे घर में सोता पड़ गया! तब उसने अपना संदूक खोल उसमें से मोमबत्ती, दीयासलाई और

एक तालियों का गुच्छा निकालकर अपने आंचल में बांधा, फिर वह एक स्याह चादर ओढ़, अपने कमरे का दीया गुल करती हुई, दबे पांव उतरकर, उस कोठरी में पहुंची, जिसमें एक दिन रामलोचन को गढ़ा खोदते और इसको दीया दिखलाते सुकुमारी ने देखा था। उस कोठरी में पहुंच और उसका किवाड़ भीतर से बंदकर उसने आंचल से ताली निकाल एक आलमारी खोली और उसमें से औज़ार निकालकर धीरे धीरे उस कोठरी की बीचोबीच वाली पत्थर की पटिया उखाड़ने लगी। थोड़ी देर की मेहनत में वह पटिया अलग कर दी गई और फिर एक हाथ ज़मीन और खोदने पर एक पटिया और मिली, और उसे भी सुकुमारी की मां ने उठाकर अलग किया। उस पटिया के हटाते ही एक सीढ़ियों का सिलसिला नज़र आया, जिसको तय करती हुई वह नीचे उतर गई। दस-बारह डंडे सीढ़ी उतर जाने पर वह एक कोठरी में पहुंची, जिसमें चारों ओर कहीं दर्वाज़े का कोई निशान न था, और वहां पर एक लोहे की संदूक में काग़ज़ के दो बंडल रक्खे हुए थे! उन बंडलों को उसने उठा लिया और फिर ऊपर वापस आकर, और चटपट गढ़ा पाटकर, पटिया बराबर जमादीं, जो ज्यों की त्यों बैठ गई। फिर वह रौशनी बुझाकर वहांसे बाहर आकर उस कोठरी में पहुंची, जिसमें बैठे बैठे मानिक ने एक दिन अपने ऊपर षड्यंत्र होने की बात सुनी थी। जिस कोठरी से मानिक ने दो आदमियों की बात चीत सुनी थी, वही कोठरी हुसैनी के रहने की एक ख़ास जगह थी; उसके बगलवाली कोठरी में आकर सुकुमारी की मां ने धीरे से आहट लेना शुरू किया, पर सन्नाटा मालूम पड़ने से उसने जान लिया कि हुसैनी नींद से ग़ाफ़िल है! यह जानकर वह वहांसे लौटी और घूमकर दूसरे रास्ते से हुसैनी की कोठरी के दर्वाज़े पर पहुंची। गरमी के कारण दर्वाज़ा खुला हुआ था, पर ज्यों ही वह उसमें झांककर देखने लगी कि चट कुछ

देखओर एकाएक हलकी चीख मारकर पीछे हट गई! उसने क्या देखा कि, 'एक ओर दीया ज़रा ज़रा टिमटिमा रहा है, और बेईमानों का सरदार काफ़िर हुसैनी काटा हुआ पलङ्ग पर पड़ा है! उसका धड़ तो पलङ्ग पर पड़ा है, पर सिर का पता नदारत!!! यह देखकर कुछ देर तक तो सुकुमारी की मां सन्नाटे के आलम में डूबी रही; फिर आप ही आप वह चौंक उठी और तेज़ी के साथ वहांसे हटकर अपने कमरे में पहुंची। ज्यों हीं उसने अपने कमरे में पैर रखकर रौशनी जलाई, त्यों ही उसे अपने सामने ब्रह्मचारी रामानन्द खड़े दिखलाई दिए।

उन्हें देखते ही सुकुमारी की मां चकपका कर बोली,—ऐं! मैं तो आपको छुड़ाने आती ही थी, पर आप खुद-ब-खुद क्योंकर छूट आए?"

ब्रह्मचारी,—"हां, जमना! आज मैंने पहरेदार को अपनी लच्छेदार बातों में ऐसा उलझाया कि वह मेरी बातों में ग़ाफ़िल होगया; बस चट उसे अपने कबज़े में कर और बांधकर और उसी बारहदरीवाले कैदखाने में उसे बंदकर ताला लगाता आया हूं, जिसमें मैं कैद था!"

सुकुमारी की मां का नाम जमना था, और ये रामानन्द वही पूर्व-परिचित ब्रह्मचारीजी थे, जिन्हें दीवान ने पकड़कर बाग़वाली उसी बारहदरी में क़ैद किया था, जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर आए हैं। वह इसी मतलब के लियेथी कि जिस अभागे को दीवान क़ैद करना, या मार डालना चाहता, उसे उसीमें लेजाकर कैद करता, या मार डालता था। ब्रह्मचारीजी भी उसी कालकोठरी में कैद किए गए थे, जिन्हें क़ैद-कर-लानेवाला दीवान ही था। वहां बराबर पहरा पड़ता था, पर आज एक पहरेदार को अपनी लच्छेदार बातों में उलझाकर गुरूजी छूट ही तो आए!

जमना ने कहा,—"खैर, अच्छा हुआ; पर यहां ठहरना न

चाहिए, और इधर से आपके भागने का भी सुभीता न होगा। चलिए बाग़ में चलें।"

यह कहकर वह ब्रह्मचारी को लिये हुई बाग़ में पहुंची और ठीक वहां पर आकर दोनों धीरे धीरे बातें करने लगे, जिसके ऊपरवाले कमरे में सुकुमारी ने आज सोने का बिचार किया था!

सत्रहवां परिच्छेद.

"अरे ! यह कहत कहा तुम सोतें ?"

''अवधार्य कार्यगुरुतामभव-
न्न भयाय सान्द्रतमसन्तमसम् ।
सुतनोः स्तनौ च दयितोपगमे,
तनुरोमराजिपथवेपथवे ॥"
(माघस्य)

सुकुमारी ने अपने कमरे के बाग़ की ओर-वाले दर्वाज़े पर खड़े खड़े जो, दो आदमियों की थोड़ी बहुत बेजोड़, मगर मतलब से भरी हुई, बातें सुनी थीं, वे इन्हीं दोनों, अर्थात् जमना और ब्रह्मचारी की थीं। बाग़ में पहुंच कर वे दोनों चौकन्ने हो चारो ओर की आहट लेकर एक जगह बैठ बातें करने लगे।

जमना ने कहा,—''यह लीजिए, यह मानिक के वे धरोहर या काग़ज़ात हैं, जो उसकी बुखारी-वाली संदूक में से ग़ायब होगए थे और जिनके देने का मैंने आपसे वादा किया था।"

ब्रह्मचारी,—(दोनों काग़ज़ों के बंडल लेकर) "क्या ये उसी कोठरी में मिले, जिसका हमने अनुमान किया था ?"

जमना,—''हां ! उस दिन तक, जिस दिन कि मैंने दीवान साहब को उस कोठरी में जाते और फिर गढ़ा खोदते देखा था, मुझे उस कोठरी का भेद नहीं मालूम था; मगर जब आपने बतलाया कि, 'मानिक के गढ़ के तहखाने से उस कोठरी में भीतर ही भीतर सुरङ्ग गई है, और वे काग़ज़ात भी वहीं होंगे;' तब मैंने एक दिन मौका पाकर उस कोठरी की ज़मीन खोदकर नीचे तहखाने में जाकर जो देखा, तो बेशक आपके कहे बमूजिब वहां इन बण्डलों को

पाया, पर मौका न देखकर उस वक्त इन्हें मैं वहीं छोड़ती आई; पर धन्य है, परमेश्वर, कि उसकी दया से आज ये कागज़ात, जिनपर मानिक का जीवन मरण निर्भर है, मैं आपके हाथों में देसकी। हां यह तो बतलाइए,—आपने तो कहा था, कि, 'उस चोर-कोठरी से मानिक के गढ़-वाले तहखाने तक भीतर ही भीतर सुरंग है,—' मगर मुझे तो उसमें कहीं भी दर्वाज़ा नज़र न आया; बल्कि उसकी दीवार पत्थरों की और ऐसी संगीन है कि वहांपर दर्वाज़ा होने का गुमान भी नहीं हो सकता !"

ब्रह्मचारी,—"मगर नहीं, उसमें उस पत्थर की दीवार ही में संगीन दर्वाज़ा है, जो एक हिकमत से खोला जाता है। खैर, अब समय नहीं है; फिर कभी, जब नारायण खुशी के दिन दिखलावेगा, तब मैं तुमको इस मकान के बहुत से तिलस्मात दिखलाऊंगा।"

हमारे पाठकों को समझ लेना चाहिए कि एक दिन दीवान रामलोचन जब उसी कोठरी की ज़मीन खोद रहा था, जिसका ऊपर ज़िक्र हुआ है, तो इत्तिफ़ाक से जमना वहां पहुंच गई थी। उसे देखकर पहिले तो दीवान बहुत बिगड़ा, पर जब जमना ने उसे इस बात का विश्वास दिला दिया कि, 'मुझसे तुम्हारी बुराई कभी न होगी;' तब वह चुप हुआ; पर तिसपर भी उसने उन कागज़ों के बंडल या बुखारी का भेद जमना को नहीं बतलाया था, और न कभी अपने पापकर्म ही का हाल उससे कहा था; जमना भी दीवान के स्वभाव और पापकर्म का बहुत कुछ हाल जानती या समझती थी, पर बेचारी लाचार थी; क्योंकि उसका कोई चारा नहीं चलता था। उसी रात्र को सुकुमारी ने जाग कर दीवान को भंडारघर में गढ़ा खोदते, और अपनी मां को दीया दिखलाते; और फिर अपने बाप को उस गढ़े में उतर जाते, और कुछ देर बाद लौट आते; और फिर गढ़ा पाटते देखा था; जिसका

कुछ ज़िक्र उसने मानिक से भी किया था !

जमना,—" एक ताज़ी ख़बर और सुनाती हूँ । "

यह कहकर उसने ब्रह्मचारी से हुसैनी के काटे जाने और सिर के ग़ायब होने का हाल कह सुनाया ।

इसे गौर से सुन कर ब्रह्मचारी ने कहा,—" ख़बर तो यह बेशक बहुत ही अच्छी है ! धन्य है परमेश्वर, कि हमलोगों को उस पतित के खून से अपने हाथ कलङ्कित न करने पड़े ! पर अचम्भे की बात है कि यह काम किसने किया ? क्योंकि इस घर में हमलोगों के हितू और उस कंबख़्त के वैरी केवल दो ही आदमी हैं, अर्थात तुम और सुकुमारी ! पर सुकुमारी बच्ची से तो यह काम कभी हो ही नहीं सकता और तुमने किया ही नहीं; फिर यह किसका काम है ? "

जमना,—" इसी बात के जानने के लिये तो मैं भी हैरान होरही हूं ! खैर, चाहे जिसने उसे मारा हो, पर काम बड़े मज़े का होगया ! और कहिए, उस बात का क्या हुआ ? "

ब्रह्मचारी,—" उस बारहदरी में तो उनका पता न लगा, पर अभी तक यह मुझे पूरा विश्वास है कि वे मौत से कभी नहीं मरे ! तो फिर यही बात हो सकती है कि दीवान ने उनको कहीं पर कैद किया है ! "

जमना,—" मगर बारह बरस तक क्या वे कैद की तकलीफ़ झेलकर अभी तक जीते बचे होंगे ! और फिर उन्हें जीते रखने का मतलब ही क्या है ?"

ब्रह्मचारी,—" इसमें एक गुप्त भेद है, जो मैं अभी तुमसे नहीं कह सकता; पर इतना तुम निश्चय समझ लो कि दीवान उन्हें कैद की चाहे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न दे, पर उनको जान से मार नहीं सकता; क्योंकि उनका मार डालना इसकी ताक़त से बाहर है ।"

जमना,—" यह बात मेरी समझ में नहीं आती ! "

ब्रह्मचारी,—" सब्र करो, पीछे से इसका हाल तुम बखूबी जान सकोगी। मैं अभी उस भेद को कहता, पर अभी उसके ज़ाहिर करने से महाराज की जान जायगी। "

जमना,—(कांपकर) " राम ! राम ! तब मैं इस भेद को नहीं जानना चाहती, पर अब आप कहां पर उनका पता लगावेंगे ? "

ब्रह्मचारी,—" उस बारहदरी का, अर्थात जिसमें मैं कैद था, कुल हाल मुझे मालूम है; सो पहरेदार को अपने काबू में करते ही मैंने उस मकान की सारी तलाशी लेली, पर वहां वे नहीं हैं। इस घर में भी, जिसमें तुम लोग रहती हो, वे नहीं हैं, यह भी मुझे मालूम है। "

जमना,—" और वह पीपल का पेड़ ! "

ब्रह्मचारी,—" हां ! अगर मुझे यहांके भेदों में से कोई भेद नहीं मालूम है, तो केवल उसी पेड़ का ! मगर ताज्जुब है कि महाराज ने, जैसा कि तुमने बतलाया है, इसका हाल मुझसे क्यों नहीं कहा ? "

जमना,—" सो तो महाराज ही जानें कि क्यों उन्होंने इस भेद को आपसे छिपाया, या न कहा; पर मैं कुछ पागल या अन्धी नहीं हूं कि जिस बात को अपनी आंखों से कई बार देखूं, उसे अनदेखी बात मान लूं ! "

ब्रह्मचारी,—" क्या ! सचमुच तुमने उस पेड़ के अंदर किसी को जाते और आते देखा है ? "

जमना,—"क्या मैं आपसे दिल्लगी करती हूं ? एक बेर नहीं, बल्कि कई बेर मैंने अपनी आंखों देखा है कि कभी हुसैनी, और कभी खुद दीवान उस पेड़ के ऊपर चढ़कर घण्टों गायब रहे, और फिर उस पर से उतरे। एक दिन रात को जागकर सुकुमारी उस समय मेरे पास पहुंची, जब कि मैं अपने कमरे के दर्वाज़े पर खड़ी

उंजेली रात की छटा में उस पेड़ पर से उतरते हुए हुसैनी को देख रही थी ! सुकुमारी की भी नज़र उसपर पड़ गई और उसने मुझसे घबराकर पूछा कि, 'अम्मा ! मियां हुसैनी रात के वक्त पेड़ पर क्यों चढ़ा था, जो अभी उतर रहा है !' उसकी बात सुनकर मैं बड़ी हैरान हुई और उसकी बात उड़ाकर बोली कि, 'ऐं ! कहां ? मैंने तो किसीको भी उतरते-चढ़ते नहीं देखा !' इस पर उस समय तो वह चुप होगई, क्योंकि मैंने इसीलिये यह बात उड़ादी थी कि जिसमें सुकुमारी का ध्यान उधर से हट जाय। मैं यह बात बखूबी समझ गई थी कि इस पेड़ से किसी गुप्त भेद से कोई न कोई सरोकार ज़रूर है । निदान, उस समय तो सुकुमारी चुप हो गई, पर दूसरे दिन भोजन के समय अपने बाप से वही बात पूछ बैठी, जिसे सुनते ही मैं बहुत घबराई कि, 'इस लड़की ने पूरी आफ़त मचाई !' पर मैं क्या करती, लाचार थी। बस उसके मुंह से वह बात सुनते ही दीवानजी ने कई कोड़े उसकी पीठ पर मारे और फिर मेरी ओर झुके; मगर जब मैंने उन्हें झिझकारा, तो वे गालियां देते हुए थाली छोड़कर बाहर चले गए । बस, सच पूछिए तो उसी दिन से मेरा और सुकुमारी का जी उनकी ओर से हट गया और तब मुझे इस बात का पूरा यक़ीन होगया कि, 'यह सत्यानाशी पेड़ किसी बड़ी भारी बला से सरोकार रखता है !' फिर मैं उसका धीरे-धीरे पता लगाने लगी। एक दिन सांझ होने के कुछ पहिले वे हुसैनी के साथ उसी कोठरी में बातें करते थे, जो हुसैनी के बैठने की थी, या जिसमें इस वक्त वह काटा हुआ पड़ा है ! उसके अगल-बगल दो कोठरियां और हैं । इत्तिफ़ाक़ से मैं बगलवाली कोठरी में उस समय पहुंची, जब उन दोनों की बातों का सिलसिला उतार पर था। इस लिये पूरा मतलब तो मैं न समझ सकी, पर इतना मैंने ज़रूर समझ लिया कि ये लोग बेचारे मानिक पर किसी तरह की

पूरी आफ़त लाया चाहते हैं, और मुए पेड़ में कोई बड़ा ही पेंचीला भेद भरा हुआ है! निदान, जब उन दोनों की बातें पूरी होने का लच्छन मैंने जाना, तो वहांसे जल्दी से पांव बढ़ाया। मैं रोती हुई अपने कमरे में पहुंचकर सीढ़ी से नीचे उतर रही थी, तब सुकुमारी ने मानिक के आने की ख़बर मुझे दी। मैंने चट आंसू पोंछ; जल्दी से जाकर मानिक को हुसैनी की कोठरी के बगल-वाली कोठरी में बहुत ही उदास और सक्ते की हालत में देखा,। देखते ही मेरा माथा ठनका, पर फिर भी उसकी घबराहट दूर करने की नीयत से सुकुमारी के साथ उसे ऊपर छतपर भेज दिया। उसी दिन से मैं इस फ़िक्र में थी कि किसी तरह मानिक को मुंगेर से टाल दूं तो अच्छा! सो आज वह बेचारा इस हत्यारे शहर से बिदा हुआ!"

ब्रह्मचारी जमना की बातों को बड़े ग़ौर के साथ सुनता रहा; फिर बोला,—"मानिक कहां है?"

इस पर जमना ने आज सुकुमारी के जाने, मानिक से मिलने, उसके खंडहर में आग लगने, हुसैनी को पहुंच कर दुलरी और सुकुमारी को पकड़ लाने, फिर हुसैनी को खुद समझाने और उस नीच के न मानने का सारा हाल थोड़े में कह सुनाया।

इसे सुन ब्रह्मचारी ने कहा,—"यह भी अच्छा हुआ; ऐसे मौके पर, जब कि मैं निकला जाता हूं और हुसैनी मारा गया है, तब बेचारे मानिक का इस शहर में न रहना बहुत ही अच्छा हुआ! हां! एक बात तो सुनो, मेरे भागने और हुसैनी के मारे जाने की, ये दोनो घटनाएं ऐसी हैं, कि जिनसे सभी लोगों का, विशेषकर दीवान का पूरा शक मुझी पर होगा, कि, 'इसी ब्रह्मचारी ही ने कैद से छूटकर हुसैनी को मारा!'"

जमना,—"हां! यह तो ठीक है; पर***"

ब्रह्मचारी,—"पर मुझे इसकी कुछ पर्वा नहीं है। अब देर हुई।"

यों कहकर ब्रह्मचारी ने पैर बढ़ाया, जमना भी उनके साथ साथ क़दम बढ़ाती हुई ठीक सुकुमारी के सोनेवाले कमरे के नीचे पहुंचकर ठिठकी और फिर जो कुछ उन दोनों में बातें हुईं; उन्हीं में से कुछ कुछ सुकुमारी ने सुनी थीं। उन बातों का असल मतलब केवल इतना ही था कि, 'ब्रह्मचारी जलदी से बाग़ के बाहर चले जायं और मानिक से मिलकर उसे धीरज दें;' इत्यादि।

निदान, फिर ब्रह्मचारी तो उसे ज़रा ठहरे रहने के लिये कहकर बाग़ के बाहर गए और जमना वहीं पर ठहरी रही। थोड़ी ही देर में वह फिर जमना के पास लौट आए और बोले,—"तुम्हारा सोचना सच निकला। वह पेड़ एक गुप्तगृह का सदर दर्वाज़ा या मुहाना है, इसलिये मैं अभी उसकी जांच किया चाहता हूँ।"

इस पर जमना ने उन्हें बहुत समझाया कि, 'इस समय अपनी जान लेकर भागो, पीछे पेड़-पत्ते की तलाशी लेना।' पर जब वे न माने, तो वह चुप होरही।

फिर ब्रह्मचारी ने कहा,—"मैं तुमसे एक तलवार, मोमबत्ती, दीयासलाई और एक मज़बूत मोटी रस्सी की मदद अभी चाहता हूं। देर न करो और अगर हो सके तो तुम भी वहां तक चलकर मेरी मदद करो।"

यह सुनते ही बिना कुछ जवाब दिए ब्रह्मचारी को ठहरने का इशारा करके वह महल के अन्दर आई और जहां तक बना, बहुत जलदी सब सामान लेकर उनके पास पहुंची। फिर स्याह चादर से अपने तईं ढांप और एक कटार ख़ुद भी लेकर वह ब्रह्मचारी के साथ बाग़ की दीवार टप कर उस कंबख़्त पीपल के पेड़ के पास पहुंची।

हमारे पाठकों को जान लेना चाहिए कि पूर्व के परिच्छेद में काली चादर ओढ़े जो औरत पेड़ के इर्द-गिर्द टहल रही थी, वह

जमना ही थी। और पेड़ के अन्दर से जो दो आदमी निकले थे, उनमें एक तो ब्रह्मचारी रामानन्द थे, और दूसरा वह कैदी था, जिसको ब्रह्मचारी तलाश कर रहे थे; और जिसका असली भेद समय पर आप ही खुल जायगा।

अठारहवां परिच्छेद.

"कौतुक यह का दीखपरचो !"

"अविज्ञातप्रबन्धस्य, वचो वाचस्पतेरिव ॥
व्रजत्यफलतामेव, नयद्रुह इवेहितम् ॥"

(भारवेः)

सूर्योदय के कुछ पहिले दीवान रामलोचन की सवारी भागलपुर से लौट आकर मुंगेर-वाले मकान के सदर फाटक पर रक्खी गई। पालकी के भीतर से दीवान बाहर निकला। सिवाय कहारों के उसके साथ के अर्दली पीछे छूट गए थे, इस लिये उसने सदर फाटक पर धक्का मारकर पहरे-वाले को पुकारा, किन्तु बार बार के पुकारने और ज़ोर ज़ोर से फाटक भड़काने पर भी किसीने भीतर से जवाब नहीं दिया। तब तो सारे कहारों ने भी गला फाड़ फाड़कर पुकारना प्रारम्भ किया पर भीतर से किसीने भी जवाब न दिया।

यह विचित्र कौतुक देखकर दीवान का माथा ठनका, उसने मन ही मन कहा कि,—"यह माजरा क्या है? ऐसा क्यों हुआ? भीतर के सब आदमी मर गए क्या? यह बात क्या है! क्या कुछ गोलमाल हुआ! हो, न हो, कोई बात ज़रूर है! कुछ न कुछ पेंचीली घटना अवश्य हुई है!! कुछ दाल में काला है सही!!!"

निदान, जब खूब हल्ला मचाने पर भी किसीने भीतर से कुछ जवाब न दिया, तब दीवान ने पीछे से बाग़ की दीवार लांघकर घर में घुसने का बिचार किया, इतने में उसके साथ के सब अर्दली भी आ पहुंचे थे। फिर तो बाग़ की दीवार लांघ लांघ कर सब के सब भीतर पहुंचे। सब से पहिले दीवान ने अपने दीवानख़ाने की ओर पैर बढ़ाया, पर बीच ही में उसे रुकना पड़ा; क्यों कि उसका

एक प्यादा अकड़कर बांधा हुआ पड़ा था और उसके मुंह पर जाली (१) चढ़ी हुई थी, कि जिसमें वह बोल न सके।

यह देखकर दीवान के सिपाहियों ने उस प्यादे की खलासी की, तब दीवान ने उससे पूछा,—"सूपनसिंह! तुम्हारी इस दुर्दशा का कारण क्या है?"

सूपनसिंह ने कहा,—" हुजूर! इसका सबब तो मैं कुछ भी नहीं अर्ज़ कर सकता; केवल इतना ही जानता हूं कि पिछली रात के समय एकाएक मेरी नींद खुल गई, तो क्या देखता हूँ कि, 'मसाल लिये और चेहरे पर जालदार रूमाल डाले कई जमदूत-सरीखे लुटेरे हर्बे-हथियारों से लकोदक्क खड़े हैं, और मुझे लाचार करके बांध रहे हैं!' पहिले उन हरामज़ादों ने मेरे चेहरे पर जाली चढ़ादी, फिर खाट के साथ कसकर मेरे हाथ पैर बांध दिए। फिर क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता; पर इतना अवश्य कह सकता हूं कि इस घर के अन्दर जितने लोग मौजूद हैं, उन सभों की भी मेरी ही सी दशा हुई होगी, तब तो आप के इतने पुकारने पर भी किसी ने भीतर से कोई जवाब न दिया!"

फिर तो दीवान ने देखा कि, 'मर्दाने किते के जितने सिपाही, प्यादे, टहलुवे आदि थे, वे सभी सूपनसिंह की तरह बाँधे हुए थे, और मियां हुसैनी अपनी कोठरी में कटा हुआ पड़ा था; जिसके सिर का कहीं पता न था!' यह देख दीवान—" हाय!!!"—करके धड़ाम से ज़मीन में गिर पड़ा और थोड़ी देर तक अपने आपे में न रहा। फिर वह आप ही आप चिहुंक उठा, और चट कई आदमियों के साथ बागवाली बारहदरी की ओर दौड़ा, जिसमें

---

(१) यह " जाली " सूत की रस्सी की इस ढब की बनी हुई होती है कि " तोबड़े " की तरह मुंह पर चढ़ा कर बांध देने से फिर आदमी बोल नहीं सकता। प्रायः इसका बर्त्ताव डांकू लोग करते हैं।

ब्रह्मचारीजी कैद थे। वहां जाकर दीवान ने देखा कि बारहदरी के पहरे के लिये जितने आदमी नियत थे, वे सब के सब भी सूपनसिंह की भांति लाचार करके बांधे हुए थे! एक प्यादा उस कमरे के अन्दर भी बंधा हुआ पड़ा था, जिसमें रामानंद कैद थे। यह सब देखकर दीवान पागल की भांति हक्का-बक्का-सा हो, वहीं ज़मीन में धम्म से गिर पड़ा! अर्दली के सिपाहियों ने दीवान साहब को सावधान होने के लिये प्रार्थना करके वहां पर बंधे पड़े हुए सारे पहरेवालों का बंधन खोल दिया।

निदान, उस घर के जितने लोग मर्दाने किते में थे, सूपनसिंह के अनुमान के अनुसार सभी उसी भांति बांधे हुए थे, जो धीरे धीरे खोल दिए गए। फिर दीवान ने ज़नाने महल में पैर रक्खा,—साथ में कई सिपाही भी थे। भीतर महल में भी वही लीला विराजमान थी, अर्थात जितनी स्त्रियां (ब्राह्मणी, रसोईदारिन, टहलनी इत्यादि) थीं, सब बंधी पड़ी थीं, जिनका बंधन दीवान ने अपने हाथ से खोला और फिर सिपाहियों को ज़नाने किते से बाहर जाने का हुक्म देकर जमना (अपनी स्त्री) के शयनगृह की ओर पैर बढ़ाया! हाय! वह बेचारी भी उसी भांति जकड़ी हुई पड़ी थी, जैसे कि और सब पाए गए थे!

दीवान ने चट उसके भी बंधन खोल दिए और इस वार्दात के बारे में उससे पूछा,—जिस के जवाब में उस (जमना) ने भी वैसा ही जवाब दिया, जैसा कि सूपनसिंह ने दिया था।

फिर दीवान ने सुकुमारी को पूछा कि,—" वह कहां है। "

इसे सुन जमना दीवान को दक्खिन ओर वाले उस महल में ले गई, जिसमें कल रात को सुकुमारी और दुलरी सोई हुई थीं। किन्तु अरे! यह क्या! वहां पर सुकुमारी और दुलरी का कहीं नामोनिशान भी न था, और सारा घर और सुकुमारी का पलंग खून के छींटों से भरा था! यह हाल देख जमना और रामलोचन,

दोनों ही मारे घबराहट के एक दूसरे का मुंह देखने लगे !

दीवान ने बड़ी ही घबराहट के साथ जमना से कहा,—यह सारा बखेड़ा उसी पाजी रामानन्द का किया हुआ है !"

जमना से दीवान ने रामानन्द आदि का कुछ भी भेद नहीं कहा था, इसलिये उस (जमना) ने अचरज भरी आवाज़ में पूछा,—"रामानन्द कौन ?"

यह सुन दीवान ने अपनी भूल पर अपने को बहुत धिक्कारा कि,—'क्यों मैंने जमना के आगे एक गुप्त भेद की बात कहडाली ?' यह समझकर उसने बात बना कर कहा,—"वह एक भयानक डांकू है।"

यह सुन, जमना मन ही मन मुस्कुराकर चुप होगई। इतने ही में नीचे मर्दाने में दीवान के सिपाही-प्यादों ने बड़ा कोलाहल मचाया और वह हल्ला यहां तक बढ़ा कि घबराकर दीवान भी झट से नीचे जा पहुंचा। तब उसने क्या देखा कि, 'लोग घड़े लेले कर बाहर दौड़े जा रहे हैं !'

उसने एक प्यादे से पूछा कि,—"क्या माजरा है ?"

इस पर उसने जवाब दिया कि,—"सदर फाटक के आगे वाले उस पुराने और विराट पीपल के पेड़ में बड़ी भयानक आग लगी है !"

यह सुनते ही दीवान पागल की तरह झपटा हुआ बाहर दौड़ गया और वहां जाकर उसने क्या देखा कि, 'पीपल के पेड़ की जगह एक विराट अग्नि का पहाड़ खड़ा है !'

उसने अपने आदमियों को पुकार-पुकार कर और इनाम देने का लालच दे-दे कर बार-बार यों कहना प्रारम्भ किया,—"किसी भांति इस आग को बुझाओ।

उसके आदमी-चाकर भी अपनी जान पर खेलकर उस पेड़ के बुझाने में लगपड़े थे, पर कुछ न हुआ और अग्नि का विराट कलेवर

बढ़ता ही गया! सच तो यह है कि उस समय "दमकले" की चलन नहीं थी, यही कारण था कि पेड़ की आग नहीं बुझाई जा सकी। हां, लोगों ने सैकड़ों घड़े जल पेड़ की जड़ में डाल दिए, पर इससे क्या होता था।

अभी थोड़ी देर पहिले दीवान की पालकी सदरफाटक पर आकर ठहरी थी, उस समय इस पीपल के पेड़ में आग का नाम भी न था, पर इतनी थोड़ी देर में ही उस पेड़ के स्थान में एक आग का भयानक पहाड़ खड़ा हो गया, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है!!!

निदान, दोपहर को भयानक आग ने उस पेड़ की जगह अंगारों के ढेर लगाकर धीरे धीरे अपना विराट कलेवर समेटना आरम्भ किया; और जब तक पेड़ का नाम निशान न मिट लिया, तब तक बेईमान दीवान भी कठपुतली की भांति वहीं खड़ा-खड़ा इस अग्निलीला के साथ साथ अपने हृदय की आग को भी भड़काता रहा! तीसरे पहर के समय दीवान एकाएक चौंक उठा और चट लपका हुआ, भण्डारघर की ओर पहुंचा। वहां जाकर वह क्या देखता है कि, 'जिस गुप्तकोठरी में से मानिक के दो कागज़ों के बण्डल निकालकर जमना ने रामानन्द को दिये थे' वह खुदी हुई पड़ी है और वहां उन कागज़ों के बण्डलों का नाम भी नहीं है। यह देख दीवान वहीं पछाड़ खा और गिरकर बालकों की भांति पुक्का फाड़कर रोने लगा। आज कम्बख़्त हुसैनी भी जिन्दा न था कि उस हरामजादे से दीवान को तसल्ली मिलती; और दूसरों की मजाल ही क्या थी कि उस दुष्ट दीवान के सामने जाने या उसे कुछ समझाने का साहस करता!

बेचारी जमना ने कई बार उसके पास आने के लिये आज्ञा मांगी, पर उस नालायक ने नाहीं करदी, इससे जमना चुप हो बैठी।

उन्नीसवां परिच्छेद.
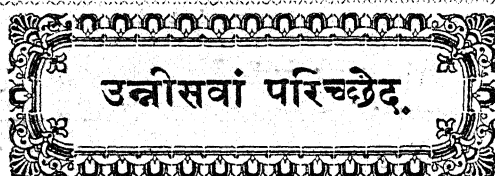
"यह तो देखन ही के जोग !"

" गृहं विचित्रं परमं महर्द्धिमद्,
दृष्टं महाश्चर्यमयं मनोरमम् ॥
यच्छिल्पनैपुण्यनिदर्शनाकरं,
दृष्ट्वैव जाता हृदि में महामुदः ॥ "

(श्रीभट्टदेवस्य)

सारा दिन योहीं बीत गया और दुष्ट दीवान के मुंह में अन्न का एक दाना, या पानी की एक बूंद भी न गई ! सांझ होने पर पहिले उसने अपने खजाने या खास कोठे को खोला और उसे अच्छी तरह से देखा, पर वहांसे एक तिनका भी नहीं गायब हुआ था !

फिर उसने वहीं अकेले में बैठकर सुकुमारी और रामानन्द के गायब होने, हुसैनी के मारे जाने, घर के सब औरत-मर्दों के बांधे जाने और सुकुमारी के शयनागार में खूनखराबा होने पर बहुत कुछ बिचार किया, पर कुछ भी खाक-पत्थर उसकी समझ में न आया ! कारण यह था कि एक तो उस समय उसकी बुद्धि ही ठिकाने न थी, दूसरे सारे दिन के कोरे उपवास के कारण और भी रही सही उसकी समझ पर पत्थर पड़ गए थे !

योहीं आधी रात तक वह अपनी निराली उधेड़बुन में ऐसा डूबा हुआ था कि उसे इस बात की खबर ही न थी कि 'समय क्या है, मैं कहां हूं, क्या करता हूं या अब क्या करना चाहिए !'

आधी रात के ढलने पर जमना एक कटोरे में दूध लिये हुई,

उसी कोठे में पहुंची, जिसमें दीवान अपने कुकर्मों के भयानक चक्रव्यूह में फंसा हुआ अपने ऊपर आने वाली घोर बिपत के स्वरूप का ध्यान कर रहा था ! आश्चर्य नहीं कि वह पहरों तक अपने उसी बिचार की बैतरणी में गोते खाया करता, पर जमना ने जाकर उसे चैतन्य कराया और बहुत कुछ समझा बुझा और हठ कर के उसे थोड़ा सा दूध पिलाया । फिर वह चाहती थी कि, 'बैठकर इधर उधर की बातें करके अपने पति के चित्त का विकार दूर करे; ' पर दीवान ने उसे वहां पर जरा भी न ठहरने दिया और उससे एक बात भी न की । लाचार होकर बेचारी जमना लौट आई और दीवान उठकर और रौशनी का सामान और एक तलवार लेकर उस कोठरी में गया, जिसमें से कागज के बंडल निकाल कर जमना ने रामानन्द को दिए थे ।

हम यह बात ऊपर कह आए हैं कि जमना ने उन बण्डलों को निकालकर उस कोठरी की जमीन को ज्यों की त्यों बराबर कर दिया था, पर सुबह जब दीवान ने अपने घर के सब लोगों की बिचित्र दशा देखी, तब देख भाल करने पर उस कोठरी की जमीन भी खुदी हुई पाई गई थी; अस्तु ।

दीवान ने उस कोठरी में पहुंच, भीतर से दर्वाजा बन्द करके मोमबत्ती जलाई और सीढ़ियों की राह उस तंग कोठरी के भीतर पहुंचा, जिसमें उन्हीं काग़ज़ों के बण्डलों का संदूक खाली पड़ा हुआ था । दीवान ने वहांसे संदूक उठाकर ऊपरवाली कोठरी में फेंक दिया और कमर से ताली निकालकर उस कोठरी के पूरब ओर-वाली दीवार में बने हुए सांप की आंख में ताली गड़ाकर कई बार दहने-बाएं घुमाई, जिससे एक तड़ाके की आवाज़ के साथ उस दीवार की एक पटिया, जोकि स्याह पत्थरों से बनी हुई थी, अलग होगई और एक आदमी के घुस जाने लायक राह बन गई ! रौशनी, कटार और ताली का गुच्छा लिये हुए दीवान उसमें घुस

गया ।

वह भी एक कोठरी थी, जो चौड़ी केवल दो हाथ और लंबी बारह हाथ थी । उसमें जाकर दीवान दक्खिन ओर मुंह करके कोठरी के अखीर में पहुंचा और वहां भी पहिले कहे हुए नियम के अनुसार दीवार में बने हुए सांप की आंख में ताली गड़ाकर दर्वाज़ा पैदा किया । उसके भीतर घुसने पर बीस डंडे सीढ़ियां तय करके वह दक्खिन मुंह किए हुए उस सुरंग में आगे बढ़ने लगा । अन्त में उसने अपने को उस तहखाने के पास पहुंचा दिया, जहां पर मानिक के काग़ज़ात की संदूकें खुली हुई पाई गई थीं ।

हम ऊपर लिख आए हैं कि उस तहखाने में की वह सुरंग, जो दीवान के घर तक आई थी, या जिसमें इस वक्त दीवान मौजूद है, उसका मुहांना ईंटों से चुना हुआ मानिक ने देखा था, पर इस समय वह खुला हुआ था । दीवान उस तहखाने में पहुंचकर कुछ देर तक टहला किया, फिर उस उजाड़ खण्डहर और जल-भुनकर ख़ाक़ होने की नौबत को पहुंचे हुए गढ़ में घूमता फिरा । थोड़ी ही देर में उसकी चाल बदली और वह फिर उसी सुरंग के रास्ते से होता हुआ अपनी उस कोठरी में लौट आया, जिसमें से कि वह सुरङ्ग में घुसा था । फिर उसने दर्वाज़ा बन्द करके उसी कोठरी में उत्तर ओर की दीवार में वैसे ही बने हुए सांप की आंख में ताली गड़ा-कर एक और दर्वाज़ा खोलो और उसके भीतर कई डण्डे सीढ़ियां उतरकर वह एक सुरंग में पहुंचा । फिर वह पतली सुरंग में घूम कर एक ऐसे ठिकाने पर पहुंचा, जहां पर दो रास्ते हो गए थे और उनमें से एक पच्छिम और वायुकोन की ओर तथा दूसरा उत्तर और ईशानकोन की ओर गया था; मगर दोनों ही पत्थर की चट्टान से ऐसे बने हुए थे कि बुद्धिमान आदमी के ध्यान में भी यह बात नहीं आ सकती थी कि यहां पर दर्वाज़ा भी होगा !

निदान, दीवान ने पहिले पच्छिम ओर का दर्वाजा खोलकर उधर ही पैर बढ़ाया। यहां पर इतना और समझ रखिए कि इस सुरङ्ग में जितने दर्वाज़े दीवान ने खोले या बन्द किए, वे सब उसी रीति से जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं।

दीवान भीतर ही भीतर उस बारहदरी के नीचे पहुंचा, जिसमें रामानंद कैद थे। वहां पर जमीन में दो तीन कुएं बने हुए थे, जिनके ऊपर लोहे का तवा ढंका हुआ था। दीवान ने एक एक करके सब कुएं के तवे को उठा उठा कर और कपूर का ढेला जला जला, उसमें फेंककर एक एक बार उसमें झांक कर देखा और फिर तवा ढंप दिया। पर जरा सा तवा हटाते ही इतनी दुर्गन्धि उठी कि जिसका नाम! इसका कारण यह था कि चांडाल दीवान जिस अभागे की जान लिया चाहता, उसे इन्हीं कुओं में लाकर डाल देता था। यदि कोई दूसरा आदमी आकर इन कुओं की तलाशी लेता तो उसे उन कुओं में से सैकड़ों अभागों की ठठरियां मिलतीं; अस्तु।

वहीं पर जमीन में एक खटोला रक्खा हुआ था, उस पर बैठकर दीवान ने खटोले के पाए में ताली डाल कर घुमाई, जिससे वह धीरे धीरे ऊपर उठता हुआ छत से दो हाथ नीचे ठहर गया। तब दीवान ने जरा उठ कर छत्त में बने हुए एक छेद में ताली डालकर घुमाई, जिससे एक हलकी आवाज के साथ पत्थर की पटिया ऊपर की ओर जाकर उलट गई और बारहदरी के बीच में जाने के लिये राह बन गई। तब दीवान उसी राह से उस बारहदरी के भीतर पहुंचा, जिसके हर एक ओर तीन तीन दर्वाज़े थे। सब दर्वाज़े उसी हिकमत से खोले और बंद किए जाते थे, जैसा कि सांप के खटके का हाल हम ऊपर लिख आए हैं।

वह बारहदरी दो मंजिली थी, जिसके नीचे के मरातिब में, अर्थात जिसमें अभी दीवान मौजूद है, पलंग, मसहरी, मसनद

गद्दी तकिये और आराम के सारे सामान इकट्ठे थे कि जिनसे जो उसमें रहे, उसका भली भांति गुजारा होसके; और उस बारहदरी के सब दर्वाजों में ऐसे मोटे मोटे लोहे के सींखचे लगे थे कि जिनका तोड़ना या काटना सहज काम न था। वे सब दर्वाजे जिस तरह खुलते थे, उसका हाल हम ऊपर लिख ही चुके हैं।

हां! उस बारहदरी के बीचों बीच ऊपर की छत में एक जंजीर के सहारे से एक घंटा लटक रहा था, जिसे दीवान ने उछल कर जोर से थाम लिया और जमीन में आकर भर जोर झटका दिया। इससे यह हुआ कि एक पटिया के साथ वह जंजीर नीचे झूल गई और ऊपर छत में राह बन गई। घंटे के सीध के नीचे जमीन में एक पीतल का मोटा कड़ा लगा हुआ था, उसीके साथ घंटे की जंजीर को मजबूत रस्सी से बांध कर दीवान उसी घंटे वाली जंजीर को पकड़े हुए ऊपर चढ़ गया और बारहदरी के ऊपर के मरातिब में पहुंचा। वहां पर तरह तरह के हथियार और एक किसी अभागे की ठठरी पड़ी हुई थी। इसके अलावे एक मेज़ पर आठ गोलाकार पीतल के डब्बे रक्खे हुए थे और उनपर एक, दो, तीन, इत्यादि नम्बर खुदे हुए थे। दीवान ने उनमें से छः नम्बर के डब्बे को उठा कर जोर से वहीं पत्थर के फर्श पर पटका कि चट वह फटे हुए अनार की तरह खुल गया और उसमें से एक ताली निकल पड़ी। दीवान ने उस ताली को उठा कर अपने जेब में रक्खा और जंजीर के सहारे से वह नीचे उतर आया। हमारे पाठकों को समझ लेना चाहिए कि उस बारहदरी के ऊपर के किते के भी बारहों दर्वाजे वैसे ही थे, जैसे कि नीचे के किते में थे और उनका खुलना और बन्द होना भी वैसा ही था, जैसा कि नीचे वाले का।

निदान, नीचे आकर दीवान ने रस्सी काट कर ज्योंही घंटे

को छोड़ा कि वह चट ऊपर को उठा और पटिया छत से मिलकर बराबर होगई। फिर दीवान उसी खटोले पर बैठ और बारहदरी का दर्वाजा बन्द करता हुआ नीचे उतर आया और वहांसे लौट कर उस सुरंग में वहां पर पहुंचा, जहां पर कि दो रास्ते थे; अर्थात जिनमें से एक रास्ते से वह अभी बारहदरी में आया था।

फिर वहांसे दीवान ने दूसरे रास्ते की ओर पैर बढ़ाया। दूसरे रास्ते के मुहाने पर एक भयानक सिंह एक मदान्ध हाथी पर चढ़ा हुआ बना था। दीवान ने उसी छः नम्बर वाली ताली को सिंह के मुंह में डालकर घुमाया जिससे गर्ज कर सिंह हाथी के ऊपर से ऊंचे उठ गया और एक तड़ाके की आवाज के साथ दीवार की दो पटिया दर्वाज़े के पल्ले की तरह खुल गई और दीवान उसके अन्दर घुस गया दूसरी ओर वैसे ही हाथी और सिंह बने हुए थे। सिंह के मुंह में वही ताली डालकर उलटी ओर घुमाने से दर्वाजा बन्द होता और सिंह हाथी के ऊपर चढ़ बैठता था।

वह कोठरी बीस हाथ लम्बी, चौड़ी अर्थात् चौखूटी थी और उसमें बड़े बड़े लोहे के बारह सन्दूक रक्खे हुए थे। दीवान ने उसी ताली से एक-एक करके ग्यारह सन्दूकें खोलीं और बन्द करदीं, उन ग्यारहों सन्दूकों में जवाहिरात और अशर्फ़ियां भरी हुई थीं। फिर उसने बारहवीं सन्दूक खोली जिसका डाला उठाते ही उसमें नीचे उतर जाने के लिये सीढ़ियां नज़र आईं। यहां पर इतना और समझ रखना चाहिए कि वे सब सन्दूकें जमीन के साथ पक्की की हुई थीं।

इन्हीं सीढ़ियों से नीचे उतर कर दीवान एक ऐसी कोठरी में पहुंचा, जो चारों ओर से स्याह पत्थरों की दीवार से बनी हुई थी और इसके बीचो-बीच उन चक्करदार सीढ़ियों का सिलसिला

जाकर ज़मीन में पूरा होगया था, जिसकी मदद से अभी दीवान उतर कर नीचे गया है। सीढ़ी से उतर कर दीवान चारो ओर उस कोठरी में घूमने लगा। उस कोठरी में चारो ओर की दीवारों में सिंहवाहिनी श्रीदुर्गा की चार मूर्त्तियां बनी हुई थीं।

पहिले दीवान ने दक्खिन ओर वाली दीवार की मूर्त्तिवाले सिंह के मुंह में वहीं छः नम्बर वाली ताली डालकर घुमाई, जिससे खट्ट से मूर्त्ति के बगल की एक पटिया हट गई और दीवान उसके भीतर घुस गया। उस कोठरी में हथियार भरे हुए थे और वहां पर भी एक आदमी का पंजर रक्खा हुआ था। वहां दीवान इस तरह हर एक चीज़ को ध्यान से देखता हुआ घूमने लगा कि जैसे किसी चीज़ को वह ढूंढ़ता हो! पर कदाचित् उसके मतलब की कोई चीज़ न मिली होगी, इसलिये उसने उस कोठरी से सीढ़ी वाली कोठरी में वापस आकर उसे बन्द कर दिया और ऊपर कही हुई रीति के अनुसार उसने पश्चिम ओर एक दर्वाजा खोलकर उसमें प्रवेश किया। उस कोठरी में कई अभागे छत की कड़ियों में लटक रहे थे, और सूख कर केवल उनके अस्थिपंजरमात्र शेष रह गए थे! सिवाय इसके उस कोठरी में एक कुआं भी था, जो कि तामें के तवे से ढंका हुआ था। उस पर अंगुली रखते ही दीवान थर्रा कर ज़मीन में बेसुध होकर गिर पड़ा और एक घण्टे तक बदहवास पड़ा रहा, फिर होश में आने पर वह उठा और अचरज भरी दृष्टि से उस तामें के तवे की ओर देखने लगा। थोड़ी देर तक वह उस तवे को ध्यान से देखता हुआ कुछ मन ही मन सोच बिचार कर रहा था, फिर उठा और उस कोठरी से भी वापस आकर उधर का भी दर्वाजा बन्द कर दिया। फिर उसने पूरब ओर वाले दर्वाजे को खोला, पर ज्योंहीं उस कोठरी में वह पैर रक्खा चाहता था कि सामने खड़े हुए एक पुतले ने अपने हाथ की तलवार चलाई। कुशल यही हुई कि

बच्चाजी जरा होशियार थे, इसलिये पीछे हट गए, नहीं तो वहीं पर ढेर होगए होते! तब तो उसने उस कोठरी में पैर रखने का हौसला न किया और बाहर ही से उसमें झांकने लगा। पर उस कोठरी में सिवाय उस तलवार-बहादुर पुतले के और था ही क्या!

निदान उसे भी बन्द करके दीवान ने उत्तर ओर का दर्वाजा खोला और उसके भीतर एक बहुत ही लम्बे-चौड़े और साफ़ घर में वह पहुंचा, जिसमें एक आदमी के रहने के सारे सामान इकट्ठे थे और बर्त्तने के लायक सब तरह के घर बने हुए थे। उस घर के ठीक बीचो-बीच, अर्थात आंगन में ऊपर से कुछ उजाला और हवा आने की राह थी और चारों ओर से पीपल की जड़ आ-आ कर जमीन के अन्दर घुसी हुई चली गई थीं।

हमारे पाठकों को समझलेना चाहिए कि जमीन के अन्दर यह वह जगह थी, जिसके ऊपर वह आफत का मारा बड़ा पुराना पीपल का पेड़ था, जिसे कल किसीने आग लगाकर फूंक डाला था! ऊपर से तो वह पेड़ सब स्वाहा हो ही चुका था, पर नीचे की उसकी जड़ बची हुई थीं; पर वहां पर इतनी गर्मी थी कि दीवान देर तक वहां न ठहर सका और वहांसे भी वापस आया, और फिर उसका भी दर्वाज़ा बंद करके चक्करदार सीढ़ियों की मदद से उस संदूक के बाहर हुआ, जहां पर वैसे ही और भी ग्यारह संदूक रक्खे थे।

निदान, फिर तो बराबर सब दर्वाज़ा बंद करता हुआ वह भण्डार-घर-वाली कोठरी में आ पहुंचा और वहांकी पटिया बराबर करके दर्वाज़ा खोलकर कोठरी से बाहर हुआ। उस समय सुबह की सफेदी नीले आस्मान पर अपना रंग फैला चुकी थी!

बीसवां परिच्छेद.

"यापैं और कहा अब ह्वै है !"

"न सुखं नास्ति मे स्वास्थ्यं, न शान्तिर्नैव साहसः।
किं करोमि क्व गच्छामि, किं त्यजामि निजासून् ॥"
(पद्माकरस्य)

दूसरे दिन पीपल के पेड़ की सारी आग ठंढी हो चुकी थी। दीवान ने सारे लकड़ी कोयले हटवा कर जब वहां की जमीन साफ कराई, तब वहां पर जमीन में जड़ा हुआ एक बड़ा भारी, मोटा और दो गज के व्यास का एक लोहे का चद्दरा दिखलाई दिया! दीवान ने दिन भर तो सब्र किया, पर आधी रात को वहां जाकर एक ताली के सहारे से उस तवे को खोला और कमंद के जरिए वह नीचे उतर गया; पर वहां थोड़ी देर तक मोमबत्ती के उजाले में कुछ देर तक देख भाल कर चट वह ऊपर वापस आया और आप ही आप बोल उठा,-"गजब होगया! अब इससे बढ़कर और क्या होसकता है! अब मैं जरूर ही कुत्ते की मौत मारा जाऊंगा,—तो फिर अपनी जान आप ही क्यों न दे डालूं?"

निदान, फिर उसने उस लोहे के तवे को बड़ी कठिनाई से तोड़ ताड़ कर अलग किया और आप ईंट-पत्थर लाकर उस गढ़े में डालना प्रारंभ किया; पर उस अकेले के किए क्या होसकता था! तौभी रात भर तक उसने जहां तक होसका, उस गढ़े में ईंट-पत्थर डाले; पर पता भी न लगा कि वे सब क्या हुए, या कहां गए!

हमारे पाठक यह बात जान और देख चुके हैं कि उस पेड़

के नीचे एक बहुत बड़ा घर था, फिर अकेले दीवान के पाटे वह क्योंकर पट सकता था! लाचार सुबह होने पर सैकड़ों मजदूर लगाकर उसने उस गढ़े को पाट दिया और फिर यह नहीं मालूम पड़ता था कि यहां पर कभी कोई पेड़ था!

योंहीं तीन दिन तक वह इतना घबराया हुआ और बदहवास था कि उसके खाने, पीने, सोने या किसी बात का भी ठीक सिलसिला न था।

इक्कीसवां परिच्छेद.

"सखीरी ! तो-समान जग कौन !"

"सखि ! पतिविरहहुताशः,
किमिति प्रशमं न याति नयनाद्भिः ॥
शृणु कारणं नितम्बिनि !
मुञ्चति नयनोदकं तु सस्नेहम् ॥"
(सुभाषितस्य)

"ऐं ! तुम फिर कोने में बैठकर आंसू बहाने लगीं ?" यों कह और दौड़कर एक नौजवान सुन्दरी ने एक तेरह-चौदह बरस की बालिका की आंखों के आंसू अपने आंचल से पोंछ और उसे गले लगाकर कहा,-"भई ! तुम यदि उदास रहा करोगी तो मेरी जान निकल जायगी। प्यारी, सखी! तुम क्यों उदास होती हो ? बतलाओ, तुम क्यों आंसू गिराती हो !"

अरे ! यह तो सुकुमारी है ! हां, हां ! सुकुमारी ही है, पर वह इस समय कहां है, और यह उसके आंसू पोंछनेवाली दूसरी सुन्दरी कौन है ?

यह बात हम आगे चलकर बतला देंगे, पर अभी इनदोनों में क्या क्या बातें होती हैं, सो सुनिए,—

सुकुमारी ने उस सुन्दरी को गले लगाकर कहा,—"प्यारी ! मोहनदेई ! मेरा जी मां के लिये बड़ा घबरा रहा है ! नहीं जानती कि बाबूजी ने घर में आकर उन पर क्या आफत ढाही होगी !"

यह तो आपलोग समझ ही गए कि उस दूसरी सुन्दरी का नाम मोहनदेई था। उसने मुस्कुराकर कहा,—"पर बीबी ! ये चोचले अब रहने दो; तुम्हारी उदासी का भेद मुझसे छिपा नहीं है।"

सुकुमारी,-(ताज्जुब से) "ऐं ! तो मैं किसलिये उदास हूं ?"

मोहनदेई,—"प्यारे बन्ना मानिकचन्द के लिये !"

यह सुन सुकुमारी ने लजाकर सिर झुका लिया और मोहनदेई ने उसकी ठुड्ढी पकड़ और उसका मुंह ऊंचा कर मुस्कुराहट के साथ कहा,—"क्यों ? मैंने कैसा चोर पकड़ा ! भई ! एक दिन मेरी भी यही हालत हुई थी, पर जबसे प्यारे दूलह को मैंने पा लिया, तबसे आजतक तो नारायण की दया से छिनभर भी वियोग होने की बारी न आई।"

सुकुमारी,—"नारायण करे, किसीका भी प्यारे से बिछोह न हो; पर मैं इस समय सचमुच मां के लिये घबरा रही हूं। मुझे यहां आए आज चार दिन हुए, इस दर्म्यान में उन पर क्या बीती होगी ?"

मोहनदेई,—"लो, तुम्हारा यह खुटका तो मैं अभी मिटाए देती हूं। कल तुम्हारी मां के हाथ का लिखा हुआ खत यहां आया है, यदि देखा चाहो तो उसे तुमको दिखला दूं; पर भई! मैं चोरी से यह खत तुम्हें दिखाती हूं; सो तुम भी खत देखने की बात किसी से जाहिर मत करना।"

इस पर सुकुमारी ने खत के भेद को गुप्त रखने की प्रतिज्ञा की, तब मोहनदेई ने अपनी कमर में से एक खत निकाल कर सुकुमारी के हाथ पर धरा।

उसने उस खत को कई बार पढ़ कर मोहनदेई के हाथ धरा और मुस्कुराकर कहा,—"प्यारी, सखी! अब मैं उदास न होऊंगी।"

मोहनदेई,—"सचमुच, तुम्हें उदास देखकर ही मैंने चोरी से यह खत लाकर तुम्हें दिखला दिया कि जिसमें तुम उदास न होवो; पर प्यारे बन्ना की बात का तो, तुमने सखी! कुछ जवाब ही नहीं दिया; एं ! क्या मैं तुम्हारे प्यारे को अपना लूंगी, जो तुम मुझसे उड़ रही हो ?"

सुकुमारी,—"बीबी ! तुम बड़ी बेहया हो।"

मोहनदेई,—(उसका मुखड़ा चूमकर) "यह तो, सखी! तुमने सच कहा! बेहयाई का बोरका तो मैंने उसी दिन ओढ़ा था, जब मां से गङ्गा नहाने का बहाना करके मानिक से मिलने गई थी! और***"

सुकुमारी,—(उसे रोककर) "जान पड़ता है कि दुलरी रांड ने तुमसे सब कुछ कह दिया है, तभी तुम मुझे इतना छेड़ रही हो!"

मोहनदेई,—"दुलरी ने तो नहीं, खुद तुम्हारे दुलराजी ने ही सारी रामायण मुझे सुनाई है!"

सुकुमारी,—(जल्दी से) "वे कहाँ हैं?"

मोहनदेई,—"वह मारा! क्यों, कैसे धीरे से टोह लेने लग गईं? ऐं!"

सुकुमारी,—"तुम बड़ी खोटी हो।"

मोहनदेई,—"तब तो मैंने तुम्हारे प्यारे को मोह लिया! अब तुम दूसरा बर खोजो!"

सुकुमारी,—"मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे दिक न करो।"

मोहनदेई,—"अर्थात् चटपट तुम्हारे बँदरे से तुम्हें मिला दूं? ऐं! पर इसका कुछ इनाम भी तो मिलना चाहिए।"

सुकुमारी,—(सिर नीचा किए हुई) "क्या लोगी, अई!"

मोहनदेई,—"वाह, वाह! कैसे मजे में राजी होगईं? जानो, मैं तुम्हारे प्यारे को आंचल में ही लिये खड़ी होऊं!"

सुकुमारी,—"हाय! तुम क्यों मुझे पानी पानी किए डालती हो?"

मोहनदेई,—"इसीलिये कि बिना पानी की नारी दो कौड़ी की होती है!"

सुकुमारी,—"तो, अब मैं भी तुम्हारे साथ बेहया बनूं, तब तुम मानोगी?"

मोहनदेई,—"अल्लाह! यह हौंसला! अच्छा, देखूं तो सही

कि तुम्हारी दौड़ कहां तक है ? "

सुकुमारी,—" भई ! तुम ऐसी रसीली हौ कि मेरा जो तो तुम्हारे ही साथ शादी करने को चाहता है ! "

मोहनदेई,—" बहुत खूब ! मगर यह तो बतलाओ, कि तुम मेरी जोरू बनोगी, या खसम ! "

यह सुन बेचारी सुकुमारी छिन भर के लिये चुप होगई और मोहनदेई की ओर देखकर हंसने लगी; क्योंकि उसने कभी किसी के साथ इतनी ठट्ठेबाज़ी नहीं की थी कि वह मोहनदेई के साथ छेड़छाड़ में टिक सकती।

मोहनदेई ने कहा,—"क्यों ? जवाब दो तो कंगन बांधूं ? "

सुकुमारी,—" जाओ जी ! मैं तुमसे नहीं जीत सकती।"

मोहनदेई,—" तो तुम साफ साफ यह क्यों नहीं कहतीं कि मैं मानिक के अलावे और किसीसे बात करना भी पसन्द नहीं करती ! "

सुकुमारी,—" अच्छा, यही सही; अब जान छोड़ो ! "

मोहनदेई,—" अब क्या मैं तुम्हारी जान छोड़नेवाली हूं ! अभी तो तुम्हारी सौत बनना बाकी ही है। "

सुकुमारी,—" अरे ! तुम ब्याही हौ न ? भई ! तुम्हें आगे पीछे का कुछ भी ज्ञान नहीं है। "

मोहनदेई,—" इसमें मैंने अनजान पने की कौन सी बात की ? अरे ! द्रौपदी के पांच थे, मेरे दो ही सही ! "

सुकुमारी,—" तो फिर तुम्हारे ऐसी सौत का मैं चरण धो धो कर पीना भी पसन्द करती हूं। "

मोहनदेई,—(सुकुमारी का मुंह चूमकर) " प्यारी ! बस, इतनी देर में एक जवाब तुमने मजेदार दिया ! अच्छा, यह लो, अपने प्राणप्यारे का खत; और इसका जवाब, यदि दिया चाहो तो, अभी लिख कर देदो। "

इतना कहकर मोहनदेई ने सुकुमारी के हाथ में एक चिट्ठी देदी, जिसे लेकर सुकुमारी पढ़ने लगी। वह चिट्ठी यही है,—

" प्यारी, सुकुमारी !

" मुझे भाभी से यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि तुम भी यहीं आगई हो। अभी तुम्हारा आना कई कारणों से इतना गुप्त रक्खा गया है, कि मुझ पर भी लोगों ने नहीं जाहिर किया है और यही कारण है कि तुम्हारे आने के दिन से मैं भी ऐसे पहरे में रक्खा गया हूँ कि मैं तुम्हें, या तुम मुझे, न देख सको। यद्यपि मैं यह जानता और समझता हूं कि यह सब जो कुछ होरहा है, सो सब हमारी-तुम्हारी भलाई ही के लिये; पर जी नहीं मानता, इसलिये और नहीं तो भला अपने प्यारे प्यारे हाथों से दो अंगुल का पुरजा तो लिख भेजो कि उसीसे अपने लहकते हुए कलेजे को ठंढा करूं। यदि कोई ऐसा संयोग हुआ कि मैं तुमसे मिल सकूं तो भाभी हमारी-तुम्हारी भेंट करा देंगी। तुम खत लिख-कर भाभी को देदेना, वह मेरे पास किसी न किसी तरह भेज देंगी। प्यारी ! धीरज रखना, घबराना मत, मैं हर तरह से तुम्हारा ही हूं।

तुम्हारे मुखचन्द का चकोर
मानिक। "

खत के पढ़ते पढ़ते सुकुमारी मालती के फूल की, भांति खिली जाती थी। उसकी ऐसी दशा देखकर मोहनदेई मन ही मन खुश होती और कहती थी कि किसी तरह इन दोनों प्रेमियों को आपस में मिला देना चाहिए।

ज्यों ही सुकुमारी ने चिट्ठी अपनी आंखों के आगे से हटाई, त्यों ही मोहनदेई ने मुस्कुराकर कहा,—"क्यों, मेरी करामात देखी?"

सुकुमारी,—(उसके गले से लपटकर) "हां ! जिठानीजी ! तब तो तुम इतनी शेखी बघार रही थीं ! "

मोहनदेई,—"तो इसका कुछ जवाब भी दोगी ?"

सुकुमारी,—"तुम्हीं लिख दो।"

मोहनदेई,—"और मैं ही तुम्हारे बदले उनके पास जाकर सो भी रहूं !"

सुकुमारी,—"तुम्हारी जबान में जरा रुकावट नहीं है।"

मोहनदेई,—"सो कैसे हो ? मुझे तो ऐसा चोचला आता नहीं कि 'मन में भावै, मूड़ हिलावै !' तो जाकर लाला से कह दूंगी कि तुम्हारी बहूजी ने तुम्हारे प्रेमपत्र पर थूका भी नहीं !"

सुकुमारी,—"सचमुच, भई ! तुम गजब करती हो ? ऐसी चुहलबाज औरत तो मैंने सपने में भी नहीं देखी !"

मोहनदेई,—"अच्छा, तो मैं चली, और—"

सुकुमारी ने उसका आंचल थाम कर बैठाया और कहा,—"खफा मत होवो, बीबी ! लाओ-दावात, कलम, कागज कहां है ?"

मोहनदेई,—"आओ, भीतर मेरे कमरे में बैठकर लिखो, तब तक मैं एक जरूरी काम कर आऊं।"

यों कहकर मोहनदेई वहांसे चली गई और सुकुमारी कमरे में जाकर मानिक के खत का जवाब लिखने लगी। जब खत पूरा होगया तो उसने उसे लिफाफे के अन्दर रखकर लाह से मुहर कर दी और फिर मोहनदेई को देने के लिये वह ज्यों ही उठी, त्यों ही मोहनदेई उसके सामने आ गई !

सुकुमारी ने कहा,—"लो, जिठानीजी !"

मोहनदेई ने खत हाथ में लेते ही मुहर तोड़ और लिफाफा फाड़कर दूर फेंक दिया और खत को खोलकर पढ़ना प्रारम्भ किया ! उसका यह रङ्ग-ढंग देखकर सुकुमारी मारे लज्जा के मानो मर मिटी ! उसने चाहा कि मोहनदेई के हाथ से खत छीन कर फाड़ डाले; पर मोहनदेई इतनी चालाक थी कि सुकुमारी उसका कुछ भी न कर सकी।

तब उसने गिड़गिड़ाकर कहा,—"मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम इसे न पढ़ो।"

मोहनदेई ने मुस्कुराकर कहा,—"तुम सच बताओ, मैंने जो तुम्हें खत दिया था, वह खुला हुआ था, या बन्द ?"

सुकुमारी,—"खुला हुआ !"

मोहनदेई,—"फिर तुम मुझे बन्द खत देनेवाली कौन हो ?"

सुकुमारी,—"किसी का बन्द खत, बिना उसकी मर्जी के, जबरदस्ती खोलकर पढ़ना बड़ा पाप है।"

मोहनदेई,—"पर मैं ऐसे पाप को पुण्य समझती हूं।"

सुकुमारी,—(लाचार होकर) "तुम जो न समझो, सो थोड़ा है !"

फिर तो मोहनदेई नाच-नाच कर सुकुमारी के खत को पढ़ने लगी। वह खत यही है, दिल चाहे तो हमारे मनचले पाठक भी उस खत को पढ़ लें,—

(सवैया)

"प्यारे ! मेरे, उर लाइ तुम्हैं,
बहु भांतिन सों निज प्यार जनाऊं मैं।
जो कछु बीतत है तुमरे-
बिछुरे हिय पैं, सो बिथा का सुनाऊं मैं॥
चाहै रहौं कितहूं, पियप्यारे !
तबौं तुमरी सब भांति कहाऊं मैं।
पै, क्यों किसोरिजू ! देखन कों,
तरसावत हौ, बसि एक ही गाऊं मैं॥"

फिर इसके बाद मोहनदेई और सुकुमारी में कैसी निबटी, इसे हमारे अनुभवी पाठक स्वयं सोच-समझ लें !

बाईसवां परिच्छेद

"यह तो मन चीतोहि भयो !"

"एतत्कामफलं लोके यद् द्वयोरेकचित्तता।
अन्यच्चित्तकृते कामे शवयोरिव सङ्गमः॥"

(भर्तृहरेः)

दीवान ने भागलपुर से आकर अपने घर में जो कुछ चरित्र देखा उसका हाल हम पहिले के परिच्छेदों में कह आए हैं। इस परिच्छेद में हम इतना ही कहा चाहते हैं, कि दीवान के घर में उन सब उत्पातों का करनेवाला और सुकुमारी को उड़ा ले जाने वाला कौन है।

यह बात पाठकों को याद होगी कि आधीरात के बाद ब्रह्मचारी रामानन्द कैद से छूट और पीपल के पेड़ वाले अजायब घर में से एक कैदी को कैद से छुड़ाकर अपने साथ ले और जमना से बिदा हो एक ओर को रवाना होगए थे।

वही ब्रह्मचारी उसी रात को तीन बजे के समय बीस-पच्चीस नकाबपोश बहादुरों के साथ चुपचाप दीवान के मकान में दाखिल हुए; और एक-एक करके उन्होंने अपने साथियों की मदत से दीवान के घर के सारे औरत-मर्दों को बेकाबू करके अकेले में जमना से कुछ बातें कीं। फिर उस बेचारी को भी सभों की भांति बांध, और दुलरी तथा सुकुमारी को अपने साथ ले, चार बजते-बजते मुंगेर से उन्होंने कूच किया था।

हमारे पाठकों को यह भी याद होगा कि मानिक को सेठ अमीचन्द अपने साथ कलकत्ते ले गए थे। यह बात ब्रह्मचारी

जानते थे; सो वह भी अपने साथियों और सुकुमारी आदि को लिये हुए कलकत्ते सेठजी के घर पहुंचे। वहां पहुंच कर सुकुमारी चुपचाप सेठ साहब के महल में पहुंचाई गई और फिर सभों की सलाह से यह बात करार पाई कि जब तक कोई कार्रवाई ठीक न उतरै, सुकुमारी का यहां पर आना जाहिर न किया जाय; यहां तक कि यह बात मानिक के कानों तक भी न जाय; और सुकुमारी भी यह न जान सके कि मानिक यहीं है।

इसी सबब से मानिक के साथ बेचू पर भी इस बात की ताकीद कीगई थी कि वह भी अपनी मां दुलरी से न मिल सके और दुलरी को भी वहां पर अपने बेटे के मौजूद रहने की खबर नहीं होने पावै।

सेठ अमीचन्द को एक लड़की के अलावे और कोई संतति न थी। उस लड़की का नाम मोहनदेई था, जिसका परिचय पिछले परिच्छेद में हमारे पाठक पा चुके हैं। सेठसाहब ने लड़की का ब्याह एक गरीब, किन्तु सुशील और पढ़े-लिखे लड़के के साथ करके घर-जमाई रक्खा था, उसका नाम दौलतचन्द था।

मोहनदेई की उम्र उस समय, जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, सोलह बरस की थी। वह बहुत ही खूबसूरत, नेकचलन, पढ़ीलिखी, सुघढ़ और सुशील लड़की थी। वह सदा हँसमुख रहा करती और हंसी-चुहल में अपना समय बिताती; पर साथ ही इसके, उसकी चालचलन में किसी तरह का रत्तीभर भी ऐब न था।

यद्यपि वह कड़ोरपती की लड़की थी, उसने सासरे का कभी मुंह भी नहीं देखा था और उसका दूलह 'घरजमाई' बनाकर रक्खा गया था, परन्तु उसने कभी भूलकर भी ऐसी कोई बात अपने दूलह से नहीं कही थी कि जिससे उसके पति के जी में दुःख हो और मोहनदेई का पितृधन गर्विता सरीखा अभिमान पाया

जाय। वह सदा इस भांति अपने पति की दासी की भांति सेवा करती कि मानों वह ससुरार में रहती हो और उसके पति का ही यह सारा विभव-विस्तार हो।

साथ ही इसके, सेठ अमीचन्द ने भी दौलतचन्द को दामाद की भांति नहीं, बल्कि बेटे की भांति रक्खा था और अपनी सारी सम्पत्ति बेटी के नाम न लिखकर दौलतचन्द के नाम लिख दी थी।

यही कारण था कि मानिक ने दौलतचन्द के साथ भाई का रिश्ता लगाया, और अपने पिता के मित्र सेठ अमीचन्द की लड़की को बहन न कहकर भाभी पुकारा।

सुकुमारी की चिट्ठी लिये हुई मोहनदेई अपने शयनागार में पहुंची और एक दाई को दौलतचन्द के बुलाने के लिये उसने भेजा। थोड़ी देर में दौलतचन्द ने उस घर में पैर रखते रखते हंसकर कहा,—“ बे वक्त तलबी क्यों हुई ? ”

मोहनदेई उसे देखते ही उठ खड़ी हुई और मुस्कुराहट के साथ उसका हाथ पकड़कर बोली,—“बे वक्त कैसा ? भक्त की जब इच्छा हो, तभी वह अपने आराध्यदेवता का आवाहन कर सकता है।”

इतना कहते कहते उसने दौलतचन्द को गद्दी पर ला बैठाया और आप गद्दी से नीचे बैठ, उसका पैर अपनी गोद में रखकर दाबना प्रारम्भ किया।

दौलतचन्द ने कहा,—“छोड़ो, मेरे पैरों में दर्द होता है !”

मोहनदेई,—(घबराकर) “एं ! क्या हुआ ?”

दौलतचन्द,—(मुस्कुराकर) “हुआ और क्या ? तुम्हारे रात-दिन के दबाने से नसें दूखती हैं।”

मोहनदेई,—(हंसकर) “राम ! राम ! मेरे तो प्राण सूख गए थे। तुम भी बड़े पूरे हो !”

दौलतचन्द,—"तो अब हुक्म है न ?"

मोहनदेई,—"खूब कांटों में घसीटो। सीधी तरह तो बोलना ही नहीं आता। कहते हैं, हुक्म है न ?"

दौलतचन्द,—(उसे अपनी गोद में खैंचकर) "प्यारी ! मेरे मन में इस बात की लालसा ही रह गई कि तुमने कभी भी पितृधन-गर्विता का स्वांग मुझे न दिखलाया !"

मोहनदेई,—"चलो, हटो ! नारायण करे, ऐसी खोटी समझ होने के पहिले ही मैं मरजाऊं ?"

दौलतचन्द,—"मगर, जो आज पीछे तुमने कभी ऐसी बुरी बात मुंह से निकाली है तो ***"

मोहनदेई,—(उसे रोककर) "पर, प्राणनाथ ! दया करके तुम भी इस दासी के आगे ऐसी लगती बात न कहना कि जिसमें इसके नन्हें से सुकुमार कलेजे में बज्र सी चोट लगे।"

दौलतचन्द ने उसका मुंह चूम लिया और कहा,—"कहो, प्यारी ! क्यों ताबेदार को याद किया है ?"

मोहनदेई,—(क्रोध से उठकर) "हाय, हाय ! मैं अपना सिर पीट डालूंगी मैं तुम्हारी दासी हूं कि तुम *** राम, राम !"

दौलतचन्द,—"अच्छा, क्षमा करो।"

मोहनदेई,—"फिर वही बात ! क्षमा ! हे राम ! अच्छा, लो, मैं चली—"

इतना कहकर वह उठने लगी; पर दौलतचन्द ने उसे अपनी गोद में खैंच लिया और कहा,—"मानिक की चिट्ठी का जवाब लाई ?"

मोहनदेई,—"हां, उसी लिये तो तुम्हें बुलाया है, पर तुमने ऐसा झगड़ा मचाया कि उसके कहने की बारी न आई।"

दौलतचन्द,—"तो लाओ, मैं वह चिट्ठी उसके पास भेज दूं।"

मोहनदेई,—"क्या, खुद न दोगे ?"

दौलतचन्द,-"प्यारी ! वह मुझसे उतना ही लिहाज करता है, जितना कि छोटा भाई बड़े का कर सकता है; इस लिये बेचू के हाथ वह चिट्ठी भी मैंने मंगाई थी और यह भी उसीके हाथ भेज दूंगा।"

मोहनदेई,—"पर, बेचू से तो सुकुमारी का आना छिपाया गया है न?"

दौलतचन्द,—"हां! लेकिन पिताजी की जान में; मगर वह बड़ा लायक है, इस लिये मैंने उसे समझा बुझा कर इस बात पर राजी कर लिया है कि वह अपनी मां से भी न मिले और मानिक को भी यह खूब समझा दे कि वह भी यहां सुकुमारी के आने की बात अपने ही जी में रक्खे।"

मोहनदेई,—"तो तुमने भी उतना ही किया, जितना कि मैंने सुकुमारी के समझाने में किया; पर इतना ही नहीं, तुम्हें आज रात को ऐसा उपाय कर देना होगा, जिसमें मैं उन दोनों प्रेमियों को आपस में मिला दूं।"

इस पर थोड़ी देर तक दौलतचन्द चुप रहा, फिर बोला,— "जो हुक्म! ताबेदार ऐसा ही करेगा।"

"मैं मरजाऊं तो अच्छा हो" इतना कहती कहती मोहनदेई वहांसे चल निकली, तब उसका अंचल खैंच कर दौलतचन्द ने कहा,—"वाह, जाती कहां हो? वाह रे, सुनो,—यदि दोनो की भेंट का बंदोबस्त मैं ठीक कर भी सका, तो भी आधी रात के पहिले यह बात नहीं होसकती; क्योंकि बाबूजी, ब्रह्मचारीजी वगैरह जब तक सो न जायंगे, तब तक मैं कुछ भी न कर सकूंगा।"

मोहनदेई,—"अच्छी बात है।"

दौलतचन्द,—"तो अब जाऊं, न?"

मोहनदेई,—"नहीं, जरा सा ठहरो।"

यों कह कर उसने पान लगाकर अपने हाथ से दौलतचन्द

को खिला दिया ।

फिर दौलतचन्द ने कहा,—"अब जायं, न ?"

मोहनदेई,—(मुस्कुराकर) "यह तुम्हारी इच्छा ।"

फिर दौलतचन्द चला गया और मोहनदेई ज्योंहीं अपने शयन-मन्दिर के बाहर हुई कि उसने सुकुमारी को बंगले के दर्वाजे पर पाया ।

उसने सुकुमारी को देखते ही कहा,—"एं, बीबी ! तुम में यह रोग भी है ?"

सुकुमारी,—(चकपकाकर) "कैसा ?"

मोहनदेई,—(उसे कलेजे से लगाकर) "मैं अपने प्यारे के साथ न जाने क्या करती थी, पर तुम झिलमिल की राह से सब देखती-सुनती क्यों थीं ?"

सुकुमारी,—"इसीलिये कि जब तुम मुझे बहुत छेड़ोगी, तब मैं तुम्हें समझाऊंगी ।"

मोहनदेई,—"अजी, रानी ! तुम तो मुझे क्या समझाओगी ? क्योंकि मैं ऐसी कोई बात ही नहीं करती कि मुझे कोई समझा सके; पर, हां ! तुम जब आज रात को अपने दूलह से मिलोगी, तब देखना कि मोहनदेई क्या तमाशा करती है !"

यह सुन बेचारी सुकुमारी टकटकी लगा कर मोहनदेई का मुंह निहारने लगी ।

फिर मोहनदेई ने उससे कहा,—"बस, चार घड़ी सो रहो, क्योंकि आधी रात के बाद तुमको तुम्हारे प्यारे से मिला दूंगी ।"

यहां पर यह बात भी जान लेनी चाहिए कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मोहनदेई ने सुकुमारी और मानिक को आपस में उसी रात को मिला दिया था, पर उन दोनों में क्या क्या बातें हुईं, या उस समय रसीली मोहनदेई ने क्या क्या रंग दिखलाया, इसके कहने की यहां पर कोई आवश्यकता नहीं है । यदि आप-

लोगों में से किसीके भाग्य में कभी ऐसे सुख भोगने की बारी आई हो तो स्वयं इस रस के स्वाद का अनुभव कर लीजिए और जो ऐसा सुख आपने अभाग्यवश न पाया हो तो अपने दुर्भाग्य को या हमको कोसिए ।

तेईसवां परिच्छेद.
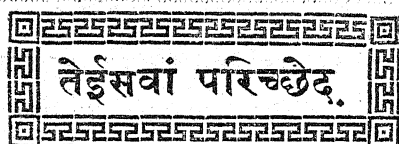
"अब तो औचक जाइ फँस्यो !"

"त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते॥"

(हितोपदेशस्य)

यह बात हमारे पाठकों को मालूम है कि जब सुकुमारी पुल के पास रात के समय दुलरी को साथ लिये हुई मानिक से मिलने गई थी, तब एकाएक कई आदमियों के साथ पहुंच कर हुसैनी उसे और दुलरी को पकड़ लाया था और बेचू वहीं लट्ठ खाकर गिर गया था। फिर जमना ने हुसैनी को जो कुछ समझाया था और हुसैनी ने उसकी बातें न मानी थीं, यह भी हमारे पाठक न भूले होंगे। यहां पर इसी विषय में हम कुछ कहा चाहते हैं।

तीन-चार दिनों तक दीवान रामलोचन ऐसी परेशानी में था कि उसके होशोहवास दुरुस्त न थे। उसकी ऐसी बुरी दशा होरही थी कि न वह पागलों में गिना जा सकता था, न होशियारों में, और न जिन्दों में समझा जा सकता था, न मुर्दों में !

चौथे दिन बड़े तड़के जब कि दीवान बागवाली बारहदरी के पास टहल रहा था, सूपनसिंह अदब से हाथ जोड़े हुए उसके सामने जा खड़ा हुआ और बोला,—"अगर हुज़ूर इजाज़त दें तो गुलाम कुछ अर्ज़ करे।"

दीवान,—(लापर्वाई के साथ) "क्या है ?"

सूपनसिंह,—"ताबेदार किसी नाज़ुक मामले की खबर हुज़ूर के कानों तक पहुंचाया चाहता है।"

दीवान,—(मुतवज्जह होकर) "क्या बात है ? "

तब तो सूपनसिंह ने धीरे-धीरे एक-एक करके वे सारी बातें, अर्थात् मां की मर्ज़ी से सुकुमारी का दुलरी के साथ रात के वक़्त गंगा नहाने के बहाने से मानिक से मिलने जाना; मालिकनी के हुक्म से गनेस का बाग़ के पिछवाड़े वाला दर्वाज़ा खुला रखना; यह देख कई आदमियों के साथ हुसैनी का सरजमीन पर पहुंच कर दुलरी और सुकुमारी का गिरफ्तार कर लेना; फिर इस बात की खबर हुजूर तक न हो, इस बारे में मालिकनी का हुसैनी को बहुत कुछ समझाना और उस (हुसैनी) का न मानना; और उसी रात को डाका पड़ना, हुसैनी का मारा जाना; और दुलरी, बेचू और सुकुमारी का गायब होना; तथा घर के सब औरत-मर्दों का बेतरह जकड़ कर डाकुओं के हाथ से बांधा जाना; इत्यादि कह सुनाया ।

इन बातों को सुनते सुनते कई बार दीवान के चेहरे के रंग कई भांति से बदलते गए थे; वह जहां खड़ा था, वहीं बैठ गया और सूपनसिंह को चले जाने के लिये कहा; क्योंकि जो कुछ बातें सूपनसिंह ने बयान की थीं, इनके अलावे वह दीवान के गुप्त भेदों से बिलकुल अन्जान था, अर्थात सूपनसिंह को बारहदरी या पीपल के पेड़ का गुप्त भेद अथवा रामानंद के कैद रहने का हाल नहीं मालूम था; क्योंकि दीवान रामलोचन इतना बड़ा धूर्त्त था कि जिस काम पर जिसको न लगाता, उसके भेद को भी वह उस पर जाहिर नहीं होने देता था । यही कारण था कि बारहदरी या उसमें के कैदी से सूपनसिंह बिलकुल अनजान था ।

सूपनसिंह के जाने पर दीवान ने बारहदरी के पहरेदार से बुलाकर पूछा कि,—" कैदी किस वक्त भागा ? "

इस पर उसने बतलाया कि,—" रात के बारह बजने का समय रहा होगा ! "

यह सुनकर दीवान ने उस पहरेदार को बिदा किया और इन बातों पर उसने घंटों तक बहुत कुछ सोच विचार किया। उसने बहुत कुछ सोचने समझने पर, और उस दिन की सारी घटनावली की आलोचना करने पर, यही निश्चय किया कि, 'यह काम जमना का है, और वह जरूर भीतर ही भीतर दुश्मनों से मिली हुई है! जरूर उसीकी साज़िश से रामानन्द छूटा, पीपल के पेड़ वाला कैदी भी भागा, सुकुमारी वगैरह भी गायब हुई और सबके साथ वह खुद भी बांधी हुई पाई गई, और बेचारा हुसैनी मारा गया; इत्यादि।

इसके बाद दीवान को उस दिन की वह बात भी याद आई, जब कि उससे सुकुमारी ने पीपल के पेड़ पर से मियां हुसैनी के उतरने की बात पूछी थी; जिस पर उसने सुकुमारी को कोड़ों से मारा था और जमना को मारने जाकर फिटकार खाई थी।

यह सब सोचने के बाद दीवान मारे क्रोध के कांपने लगा, उसकी आंखों से आग बरसने लगी और उसने गनेस और उन आदमियों को इकट्ठे करके, जो लोग कि हुसैनी के साथ सुकुमारी को पकड़ने गए थे, सारी बातें पूछीं; और जब सबका बयान सूपनसिंह के बयान से मिल गया तब वह नंगी तलवार लेकर जमना के मार डालने के लिए जनाने महल में चला।

उसने जनाने महल की ड्योढ़ी पर ज्यों ही पैर रक्खा था, त्यों ही सूपनसिंह ने दौड़कर घबराहट के साथ कहा,—"हुजूर, घर में हथियारबंद गोरे घुसे आते हैं!"

दीवान इस बात का जवाब भी न देने पाया था कि दस-बारह गोरों ने वहीं पहुंच संगीन का झटका देकर उसके हाथ की तलवार गिरा दी और चट उसे बेड़ी-हथकड़ी डालकर अपने काबू में कर लिया!

फिर एक गोरों के सर्दार (कर्नल) ने आगे बढ़कर दीवान से

कहा,—"जनाब इष्टइण्डिया कम्पनी के लाटसाहब बहादुर के हुक्म से तुम गिरफ़्तार होकर कलकत्ते रवाना किए जाते हो। पचास गोरे तुम्हारे हमराह कलकत्ते जायंगे और हम पचास गोरों के साथ तब तक तुम्हारे मकान को घेरे पड़े रहेंगे, जबतक कलकत्ते से हमारे वास्ते दूसरा हुक्म न आवेगा।"

निदान, पापी दीवान कैद होकर कलकत्ते रवाना किया गया; और उसके जाने पर ब्रह्मचारी ने प्रगट होकर घर के सब नौकर-दाइयों को गोरों के पहरे में बाग़वाली बारहदरी में कैद किया। सारा मकान गोरों और ब्रह्मचारी के मातहत एक हिन्दू अफ़सर के ऊपर छोड़ दिया गया और ब्रह्मचारी कई गोरों के साथ जमना को पालकी में सवार करा और उसे अपने साथ ले कलकत्ते रवाना हुआ।

दीवान के गिरफ्तार होने पर जमना बहुत रोई, पर उसे यह कह कर ब्रह्मचारी ने ढाढ़स दिया कि, "घबराओ मत, तुम्हारे ऊपर महाराज प्रसन्न हैं, इस लिये दीवान की जान का तो कोई खतरा हई नहीं, इसके अलावे और भी जहां तक होगा, ऐसा किया जायगा कि जिसमें उसका और तुम्हारा साथ न छूटे," इत्यादि।

चौबीसवां परिच्छेद.

"कहो अब यामें कहा बसाय !"

"यथा खलः खलत्वं स्वं न कदाचिद्विमुञ्चति ।
तथैव साधुः साधुत्वं नैव त्यजति कर्हिचित् ॥"
(नीतिमञ्जर्याः)

हमारे प्यारे पाठक इस बात को भली भांति समझते होंगे कि दीवान के विरुद्ध खड़े होने वालों में पहला नम्बर मानिक का है। यद्यपि दीवान इतने बड़े घोर पाप का पापी और बड़े भयानक अपराध का अपराधी है, कि बिना मुद्दई के भी उसकी की हुई कार्रवाइयां, जो कि लोगों पर जाहिर हैं, उसको जहन्नुम में मिला देने के लिए काफ़ी हैं, तथापि यदि मानिक दीवान के बखिलाफ़ कुछ भी न कहे तो फिर दीवान के मुकद्दमे में जरा कठिनाई आ सकती है।

पर बड़े ताज्जुब की बात तो यह है कि लाट साहब, सेट अमीचन्द और ब्रह्मचारी आदि के लाख समझाने पर भी मानिक दीवान के खिलाफ कुछ नहीं कहना चाहता ! उसको लोगोंने हर तरह से भय दिखलाया और यहां तक धमकाया कि, "यदि तू दीवान के ऊपर उसके अत्याचारों के लिये दावा न करेगा तो तेरी जान कभी नहीं बच सकती; क्योंकि तुझे दीवान कभी जीता न छोड़ेगा और जब तक दीवान के ऊपर दावा करके तू उसे सजा न दिलावेगा; तब तक सुकुमारी तुझे किसी तरह नहीं मिल सकती" इत्यादि ।

किन्तु मानिक ने किसी तरह भी दीवान के खिलाफ़ कहना मंजूर न किया। उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि,—"चाहे जो

कुछ हो, चाहे मेरी जान भी जाय, या सुकुमारी भी न मिले; किन्तु मैं दीवान रामलोचन के खिलाफ़ कुछ भी न कहूंगा। यद्यपि दीवान ने मुझे मार डालने के सिवाय मेरा कोई नतीजा बाकी नहीं रक्खा है, तौभी अब मुझे उसके खिलाफ़ कुछ भी नहीं कहना है। मेरा सर्वस्व तो जाही चुका, मैं जीते जी ही मिट्टी में मिल गया, तो भी उसके ऊपर मेरा अब कोई दावा नहीं है। मेरी जान जाय, यह अच्छी बात है; यह तो एक दिन जायगी ही; न हो आज ही चली जाय! और सुकुमारी!—(इतना कहते कहते उसका गला कांप उठा, उसने थोड़ी देर रुककर कहा,—) और सुकुमारी की आशा भी मैंने त्यागी! हां आप लोग यह मुझ से पूछ सकते हैं कि,—'तू क्यों दीवान के ऊपर दावा नहीं करता? तो साफ़ सुन लीजिए कि न जाने क्यों अब मेरे चित्त की वृत्ति एक दम से बदल गई है और मेरे दिल ने इस बात को मजबूती के साथ पकड़ लिया है कि "दीवान के अत्याचारों का निबटेरा उसके भाग्य ही पर छोड़ दिया जाय!"

हमारे पाठक इस बात को समझ सकते हैं कि दीवान के भयानक अत्याचारों में से जितना अंश अभी तक प्रगट हुआ है, केवल उसीके लिये मानिक दीवान की बोटी बोटी काट डालने में भी राजी हो जाता; किन्तु सुकुमारी—प्यारी सुकुमारी—के बाप के खिलाफ़ अब वह कुछ भी नहीं कहा चाहता; यहां तक कि सुकुमारी के न पाने से अपनी जान दे देना वह पसंद करता है, पर अपनी प्राणप्यारी के पिशाच पिता पर कोई आफ़त नहीं लाया चाहता!

अहा! प्यारे, मानिक! तू धन्य है। लाट साहब वगैरह के साथ जो मानिक की ये सब बातें हो रही थीं, वे सब ज्यों की त्यों सुकुमारी ने सुनी थीं; किन्तु मानिक के ऐसे स्वार्थत्याग पर सुकुमारी के चित्त की क्या अवस्था हुई होगी, इसे हमारे पाठक

स्वयं समझने का उद्योग करें ! मानिक की इन बातों को सुन कर सुकुमारी ने भी इस बात की कसम खाई थी कि,—"चाहे जान जाय तो जाय, पर सिवाय मानिक के मेरा हाथ दूसरा कोई नहीं पकड़ सकता !"

निदान, जब मानिक ने किसीकी एक न सुनी, तब सब कोई लाचार होकर चुप होरहे और दूसरे उद्योग में लगे, जिसका हाल हम आगे के परिच्छेद में कहते हैं।

पच्चीसवां परिच्छेद.

"सोच तुम जी तें दूर करौ !"

"दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकीः ॥"

(श्रीमद्भागवतस्य)

लीजिए, जो कुछ अँटक या रुकावट थी, वह भी दूर हो गई । सुकुमारी की मां जमना इतना रोती-कलपती थी कि उसे शान्त करना सिवा मानिक या सुकुमारी के हो ही नहीं सकता था, इस लिये अमीचन्द ने सभी को आपस में मिला दिया । दुलरी भी बेचू से मिली और यह बात भी बेचू की जबानी मालूम होगई कि, "उस दिन लट्ठ खाने, अपनी मां की मुशकें बंधने, और दीवान के भागलपुर से वापस आने पर हुसैनी के पाजीपन के सबब से सुकुमारी पर पूरी आफत आने, इत्यादि बातों को सोच कर बेंचू ने ही हुसैनी का सिर काटकर सिर को गङ्गा में डाल दिया था !

सुकुमारी और मानिक से मिलने पर जमना कुछ शान्त तो हुई, पर फिर भी जब उस सती स्त्री का मन अपने नालायक पति के होने वाले भयानक नतीजे की ओर जाता तो वह बिलख-बिलख कर आंसू बहाती और लंबी लंबी सांसें लेती थी ।

मानिक ने लाट साहब के सामने अपने देवता-सरीखे स्वभाव का जो कुछ परिचय दिया था, उसका रत्ती रत्ती हाल जमना सुन चुकी थीं, इससे भी कुछ उसके मन में ढाढ़स हुआ था और रामानन्द ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया था, पर फिर भी उस सती का जी अपने अयोग्य पति के लिये रह-रह कर घबरा

उठता था ।

दीवान भी गिरफ़्तार करके कलकत्ते लाया गया था, यह बात हम ऊपर लिख आए हैं । पर वह सर्कारी निगरानी में दूसरी जगह रक्खा गया था और उससे जमना की, या किसीकी भेंट नहीं कराई गई थी ।

जमना ने, यह सोचकर कि,—'न जाने पीछे क्या हो ?' सुकुमारी के साथ मानिक का ब्याह करदेना चाहा, किन्तु इस बात को मानिक ने स्वीकार न किया और सेठ अमीचन्द की भी यही राय हुई कि,—'अभी शादी होने की कोई आवश्यकता नहीं है; जो कुछ होगा, पीछे देखा जायगा ।'

अब इस उपन्यास में लिखने लायक दीवान का मुकद्दमाही है, जो आगे लिखा जाता है और उसके बाद फिर उपन्यास को समाप्त ही समझना चाहिए ।

छब्बीसवां परिच्छेद.

"रे मन ! अब कुछ धीर धरै तू !"

"ज्योत्स्नेव नयनानन्दः सुरेव मदकारणम् ।
प्रभुतेव समाकृष्टसर्वलोका नितम्बिनी ॥"

(धनञ्जयस्य)

एक दिन आधी रात के समय अकेले में मानिक और सुकुमारी की आपस में भेंट होगई। सामना होते ही एक दूसरे के गले से लपटकर देर तक प्रिय-समागम का सुख लूटता और प्रेम के आंसू ढलकाता रहा! इसके बाद फिर दोनों ने एक दूसरे की आंखों का आंसू पोंछकर मुंह चूम लिया और बैठकर आपस में बातें करनी प्रारम्भ की। थोड़ी देर तक बहुत ही धीरे धीरे उन दोनों में बातें होती रहीं, पर उन बातों से इस उपन्यास का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस के बाद जो कुछ बातें हुई, उनमें से कई आवश्यक बातें यहां पर लिख देनी उचित हैं।

सुकुमारी ने कहा,—"मैंने सुना है कि बाबूजी यहां बुरी तरह गिरफ़्तार होकर आए और नजरबंद होकर कहीं कैद में रक्खे गए हैं। क्या तुमने उन्हें देखा ?"

मानिक,—"बेशक वे यहां आए हैं, और जैसा तुमने सुना है, उसी भांति वे कैद में भी रक्खे गए हैं। जहां वे हैं, सो तो मैं जानता हूं—पर उन से मिलने का हुक्म मुझे नहीं हुआ। उन्हें दूर ही से एक नज़र मैंने देखना चाहा, पर मेरी बिनती नहीं मानी गई।"

सुकुमारी,—"प्यारे! मेरे लिए तुमने उनके खिलाफ़ अवाज

खोलने से पूरा इनकार किया, इससे मेरी और मेरी माता की खुशी का ठिकाना नहीं है। हाय! जैसा कुछ उन्होंने तुम्हारे साथ राक्षसी बर्ताव किया है, उसे स्मरण करते ही रोंगटे खड़े हो आते हैं। मुझे, या किसीको भी इस बात की उम्मैद न थी कि तुम एक दम से उनके खिलाफ़ जबान खोलने से इनकार कर अपने इतने उदारहृदय का परिचय दोगे!"

मानिक,—"प्यारी! अपनी स्त्री के माता पिता भी अपने ही माता पिता होते हैं, तो फिर क्या मैं अपने बाप के खिलाफ़ कुछ कह सकता हूं?"

सुकुमारी,—"किन्तु यह बात तभी हो सकती है, जब तुम मुझसे ब्याह कर लो।"

मानिक,—"चाहे, लोक-रीति के अनुसार तुम्हारी बात मान भी ली जाय, किन्तु जब तक तुम्हारे पिता का वारा-न्यारा न हो ले, तब तक ब्याह करना ठीक नहीं है।"

सुकुमारी,—"परन्तु यदि पीछे कोई ऐसी आफ़त (ईश्वर न करे) उठ खड़ी हो कि जिससे इस शादी में— — — —"

यहां पर सुकुमारी की आवाज कांपकर रुक गई, पर उसके कहने का मतलब समझकर मानिक ने कहा,—"किसी तरह का झोल पड़जाय, तौ भी मैं तुम्हारा ही रहूंगा। यदि तुम्हारा विवाह किसी दूसरे के साथ भी हो जाय, तौ भी मैं तुम्हारे सुख को अपना समझ कर उस सुख से अपना जीवन बिता दूंगा।"

सुकुमारी,—(आँखों में आंसू भरकर) "ईश्वर ऐसा न करे। किन्तु हा,—यदि—हाय!—तो क्या तुम अपनी शादी न करोगे?"

मानिक,—"बस मेरी शादी तो अब इस जन्म में, या किसी जन्म में भी, यदि होगी तो तुम्हारे ही साथ होगी।"

सुकुमारी,—"तो क्या तुम मेरे लिये सन्यासी होगे?"

मानिक,—"इसमें भी कोई संदेह है!"

सुकुमारी,—"नहीं, प्यारे! घबराओ मत; मैं जीते दम तक तुम्हारे ही गले का हार रहूंगी। और यदि (ईश्वर न करे) ऐसा न हुआ तो फिर इस संसार में कोई पल भर भी सुकुमारी को नहीं रोक सकेगा।"

मानिक,—"तो क्या तुम मेरे लिए जान दोगी?"

सुकुमारी,—"इसमें भी कोई संदेह है? हां, सुनो तो मैंने बड़तीसी एक अजूबी बात सुनो है!"

मानिक,—"क्या?"

सुकुमारी,—"मेरे घर के सामने वह जो पीपल का पेड़ था, उसमें से कोई बूढ़ा निकला है, जो उसमें कैद था। उसीके जाहिर होते ही बाबूजी गिरफ़्तार किए गए हैं! सुना है कि उस मामले से बाबूजी का छुटकारा होना कठिन है!"

मानिक,—"क्या इसकी भी खबर तुमको लग गई? मुझे भी इस बात का पूरा पूरा पता लगा है, पर मैंने इस लिए तुमसे नहीं कहा था कि शायद तुम्हें ज्यादा दुःख हो! खैर, तो जब तुम सुन ही चुकी हो तो तुमसे जितना मैं ज्यादा जानता हूँ, सो भी कह देता हूं।—वे वृद्ध मेरे ही अभागे पिता हैं, जो इतने दिनों तक उस सत्यानाशी पीपल के पेड़ वाले तिलस्म में कैद थे और जिन्हें सब कोई मरा हुआ जानते थे।"

सुकुमारी,—(बड़ी घबराहट के साथ) "हाय! यह क्या सच है?"

मानिक,—"घबराओ मत, ऐसी बात भी कहीं झूठी कही जाती है?"

सुकुमारी,—"हाय! तब तो गज़ब होगया! अब बाबूजी की जान बचनी कठिन है।"

मानिक,—"नहीं, उनकी जान पर किसी तरह का खतरा नहीं है; क्यों कि तुम्हारी मां ने उस कैद से रिहाई दिलाने में

ब्रह्मचारीजी की बहुत कुछ मदद की थी। इस अहसान से दबकर मेरे पिता ने तुम्हारी मां से इस बात की प्रतिज्ञा की है कि दीवान को जान पर किसी तरह की आंच न आने देंगे।"

सुकुमारी,—(शान्त होकर) "तुम्हारे पिता पूजा योग्य और सच्चे देवता हैं। अहा! तभी तो तुम भी देवता का सा स्वभाव रखते हो!"

मानिक,—(मुस्कुराकर) "मगर मेरे लिए जो कुछ तुमने सोचा है, वह फजूल है; क्यों कि अगर स्वभाव के मेल ही की ओर ध्यान दिया जाय तो तुम्हारा स्वभाव तुम्हारे पिता से बिलकुल उलटा क्यों दिखलाई देता है?"

सुकुमारी,—"जो कुछ हो, किन्तु प्यारे! आज सचमुच तुमने मेरे कलेजे के ऊपर से बड़े भारी सोच के पहाड़ को हटा दिया और अब मैंने समझा कि तुम्हारे पिता ने जो मेरी माता को अभय दिया है, इसी कारण से तुम भी अब मेरे पिता के विरुद्ध कुछ नहीं कहा चाहते।"

मानिक,—(चकित होकर) "अरे! यह तो तुमने बहुत दूर की सोची, क्या मेरे दिल के अन्दर तुमने आंखें पैठाई हैं?"

सुकुमारी,—"नहीं; बल्कि तुम्हारे दिल के साथ अपना दिल मिलाकर एक कर डाला है!"

सुकुमारी की बात पूरी होते होते मोहनदेई ने वहीं पहुंच और ठट्ठा मारकर कहा,—"अल्लाह!!! वाह, री मेरी प्यारी!!! जरा दया करके मुझे भी यह बात सिखलाना कि दो दिल क्योंकर एक किया जाता है!"

एकाएक मोहनदेई के वहीं पर पहुंचने और ऐसी छेड़छाड़ करने से बेचारी सुकुमारी मारे लज्जा के धर्त्ती में गड़ी जाती थी! वह चाहती थी कि वहां से उठकर भाग जाय, पर इसके इस मतलब को समझकर मोहनदेई उस घर का दर्वाजा छेंककर खड़ी

होगई थी !

निदान सुकुमारी तो सिर नीचा करके वहीं बैठी रही, पर मानिक ने हंसकर कहा,—"क्यों भाभो ! आज भाईसाहब महल के अन्दर नहीं आए हैं ? "

मोहनदेई,—"हां ! हैं तो, बुला लाऊं ? "

मानिक,—"नहीं; मैंने इसलिये पूछा कि,—तो आपको इतनी रात के समय यहां आने की फुर्सत क्योंकर मिली ? "

मोहनदेई,—"यही सीखने के लिये कि दो दिलों को मिलाकर एक क्योंकर किया जाता है ! "

मानिक,—"यह बात तो आप भाईसाहब से ही बखूबी सीख सकती हैं ! "

मोहनदेई,—"मगर उनके पास तो दिल हई नहीं,—इसी लिये मुझे दिलदार सुकुमारी की चेली बनने आना पड़ा। "

बेचारा मानिक चुप होगया और सुकुमारी ने मोहनदेई की ओर तिर्छे देखकर कहा,—"पहिले मुंहमांगी गुरुदक्षिणा तो दो !"

मोहनदेई,—"गुरुदक्षिणा पहिले नहीं दी जाती ! "

यह सुन बेचारी सुकुमारी चुप होगई । फिर मोहनदेई कुछ कहा ही चाहती थी कि इतने ही में उसके कान में एक हलकी सीटी की आवाज गई, जिसे सुनते ही वह वहांसे तेज़ी के साथ बाहर चली गई।
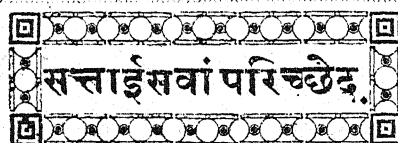
"भली, यह बात सुनाई, प्यारे !"

"रूपसम्पन्नमग्राम्यं, प्रेमप्रायं प्रियंवदम् ।
कुलीनमनुकूलं च, कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥"

(धनञ्जयस्य)

यह सीटी दौलतचन्द ने मोहनदेई के बुलाने के लिये बजाई थी। जब मोहनदेई उसके सामने गई तब उसने कहा,—"प्यारी! रात के दो बजा ही चाहते हैं। अभी बाबूजी ने मुझे बुलाकर कहा है कि, 'कल बड़े तड़के सबको कलकत्ते से मुंगेर जाना पड़ेगा।' सो सुकुमारी और उसकी मां के ले चलने की तयारी तुम करो, मानिक की तयारी मैं कर लूंगा। जहांतक हो सके, जल्दी करो; क्योंकि तड़के चार बजे कूच करना होगा,—लाटसाहब ने ऐसा ही हुक्म अभी एक सवार के ज़रिये भेजा है।"

मोहनदेई,—"क्या खूब! यह तो हथेली पर सरसों जमाना है!"

दौलतचन्द,—"सो क्या? क्या कहीं किसी शादी में जाना है, जो बड़ी लम्बी चौड़ी तैयारी करने की जरूरत है!"

मोहनदेई,—"कौन कौन लोग आयंगे?"

दौलतचन्द,—"पिताजी, मैं, तुम, सुकुमारी की मांजी, सुकुमारी, मानिकचन्द, दुलरी, गनेस, ब्रह्मचारीजी, मानिक के पिता और दाई नौकर वगैरह!"

मोहनदेई,—"सुकुमारी के बाप भी?"

दौलतचन्द,—"वह लाटसाहब की निगरानी में, उनके साथ, इसी समय रवानः होगए।"

मोहनदेई,—(अचरज से) "क्या इसी समय? भई! साहब लोग भी बड़े जल्दबाज़ होते हैं!"

दौलतचन्द,—"नहीं, बल्कि यों कहो कि अंग्रेज लोग बड़े साहसी और समय की कदर करनेवाले होते हैं।"

मोहनदेई,—"अच्छा तो मैं समझती हूं कि मुंगेर में पहुंचते ही रामलोचन का मुकद्दमा पेश होगा! प्यारे! तुमसे जहां तक बने, दीवान की जान बचाने का उपाय करना।"

दौलतचन्द,—"उसकी जान के लिये कोई चिन्ता नहीं है। राजासाहब उसके जीवनदान की प्रतिज्ञा कर ही चुके हैं, मानिक उसके खिलाफ़ कुछ कहेहीगा नहीं; फिर उसकी जान के लिये तो कोई डर नहीं है; हां, आगे जो कुछ हो! दीवान पर जो राजा-साहब और मानिक ने इतनी दया दिखलाई है; इस पर साहबलोग हम-हिन्दुस्तानियों के जङ्गलीपन पर हंसते हैं और यह नहीं बिचारते कि उनके ईसाईधर्म का मूल उद्देश भी पापी और बैरी पर दया करना ही है। अस्तु, तुम अब चटपट तयार होजाओ। दर्वाजे पर सवारियां तयार होकर आगई होंगी!"

इतने ही में नीचे से किसी सिपाही ने चिल्लाकर कहा कि, "सवारी तैयार है!"

निदान ठीक समय पर सब कोई कलकत्ते से रवाना होकर मुंगेर पहुंचे।

अट्ठाईसवां परिच्छेद.

"पाप करि जग में कौन जियो !"

"यस्मिन्देशे यथाकाले, यन्मुहूर्त्ते च यद्दिने ।
हानिर्लाभो यशो मृत्युस्तत्तथैव न चान्यथा ॥"
(नीतिरत्नावल्याः)

यह बात हम पिछले परिच्छेद में लिख आए हैं कि, 'ठीक समय पर सब कोई कलकत्ते से रवाना होकर मुंगेर पहुंचे ।' पर मुंगेर पहुंच कर सेठ अमीचन्द ने जब यह जाना कि अभी तक लाटसाहब का बजड़ा, जो कि हम लोगों के आने के बहुत पहिले ही कलकत्ते से रवाना होचुका था, अभी तक मुंगेर नहीं पहुंचा है; तब तो सेठ अमीचन्द वगैरह सब कोई हैरान हुए कि साहब बहादुर के आने में इतनी देर क्यों हुई !

सब कोई इस बारे में तरह-तरह का सोच करते थे; फिर सबकी सलाह से एक तेज़ चलने वाली पनसुई पर ब्रह्मचारीजी इस बात के पता लगाने के लिये रवाना किए गए कि साहब बहादुर के आने में देर होने का सबब क्या है, इसे जानें । ”

दूसरे दिन बड़े तड़के ब्रह्मचारीजी ने वापस आकर अकेले में अमीचन्द से मिलकर लाटसाहब के आने की खबर दी । और यह कहा कि,—"साहबबहादुर अपने साथियों के साथ, गङ्गा किनारे वाले अपने खीमें में, जो कि उनके ठहरने के लिये खड़ा किया गया है, आकर आराम कर रहे हैं और आप तथा राजा हीराचन्द को उन्होंने अभी बुलाया है । ”

इसके बाद कुछ देर तक ब्रह्मचारीजी और सेठ अमीचन्द से कुछ बात-चीत होती रही, जिसके जाहिर करने की यहां पर कोई आवश्यकता नहीं है ।

फिर सेठजी ने राजासाहब से मिलकर साहबबहादुर का हुक्म सुनाया और थोड़ी देर तक कुछ गुप्त बातचीत की, उस समय ब्रह्मचारीजी भी वहां पर मौजूद थे।

इसके बाद राजा हीराचन्द, सेठ अमीचन्द और ब्रह्मचारी रामानन्द,—ये तीनो आदमी गाड़ी पर सवार होकर लाटसाहब के डेरे पर पहुंचे।

यहां पर इतना समझ लेना चाहिए कि मुंगेर आकर राजा हीराचन्द वगैरह सेठ अमीचन्द की एक आलीशान कोठी में उतरे थे और सुकुमारी तथा जमना भी अभी तक उन्हीके साथ थीं; क्योंकि जब तक दीवान रामलोचन के घर से गोरों का जंगी पहरा न हटा लिया जाय, तब तक उस घर में सुकुमारी, या उसकी मां का जाकर रहना मुनासिब नहीं समझा गया था; इसलिये वे दोनों अभी तक राजा साहब या सेठ साहब के साथ ही थीं।

अकेले में लाटसाहब ने राजा हीराचन्द वगैरह से मिलकर बातें करते करते कहा,—

"मेरे प्यारे, हीराचन्द! आप अपने जिस खौफनाक मूज़ी की जां बख्शी किया चाहते थे, खुदा ने उस नापाक बसर को इस दुनियां से उठा कर जहन्नुमरसीदः किया; मगर मैं समझता हूं कि आप उस कंबख्त दीवान की इस खुदकुशी से जरूर रंज़ीदा हुए होंगे!"

हीराचन्द,—"बेशक, हुजूर! मुझे उस नालायक की आत्म-हत्या का हाल सुनकर बड़ा दुःख हुआ। जैसा कुछ सलूक उसने मेरे साथ किया था; उसका बदला मैं ऐसे अच्छे ढंग से उसे देता कि लोग देख कर दंग होते और यों कहते कि,—'अपने प्राण घातक बैरी पर ऐसी क्षमा तो किसीने न कभी देखी और न सुनी!' पर अफसोस है कि मेरे मन का हौसला मन ही में रह

गया और सच तो यों है कि मैं उसकी पतिव्रता स्त्री के उपकार का बदला कुछ भी न दे सका । ”

लाटसाहब,—“ मैं हैरान हूं कि जिसने आप को जिन्दा-दरगोर बना कर आपकी सारी मिलकियत को हड़प लिया और आपके बच्चे को दर दर भीख मंगा छोड़ा, आप उसे बिला सज़ा दिए ही रिहा करदेते ? ”

हीराचन्द,—“ केवल उसे मैं छोड़ ही न देता, बरन उसकी लड़की से अपने बेटे की शादी करके उसे एक अच्छी जागीर देता और जन्मभर के लिये उसे अपनी नज़रों से दूर रखकर भी उसकी औकात-गुज़ारी का पूरा ख़याल रखता; पर अफसोस है कि जगदीश्वर ने उसके भयानक पापों का बदला उसे दे ही दिया । ”

अमीचन्द,—“ चलिए, जो हुआ, अच्छा ही हुआ ! ऐसे ऐसे नालायकों से यह धर्त्ती जितनी जल्दी खाली हो, उतना ही अच्छा है । ”

रामानन्द,—(लाटसाहब की ओर देखकर) “ तो हुज़ूर ! उसकी आत्महत्या का पूरा पूरा हाल राजासाहब से अब तो कह दिया जाय न ? क्योंकि अभी तक हुज़ूर के हुक्म बमूजिब पूरा हाल राजा साहब से नहीं कहा गया है, पर सेठसाहब से मैं सारा ब्योरा कह चुका हूं । ”

लाटसाहब,—“ उसकी खुदकुशी के बारे में अब फ़कत इतना ही कहना है कि जब हम लोग कलकत्ते से रवाना हुए, सिपाहियों के पहरे में बेड़ी हथकड़ी से जकड़ा हुआ रामलोचन भी एक नाव पर चढ़ाया गया । वक्त आधी रात का था । मेरा बजड़ा साथ वाली सब नावों से आगे था । दो बजे रात के करीब पीछे की किश्तियों पर बड़ा शोरगुल मचा । मेरी नींद खुल गई और मेरे मीरमुन्शी ने मुझे इस बात की खबर दी कि “रामलोचन

कैदी ने न जाने किस तरह अपने हाथ की बेड़ी खोल और बड़ी फुर्ती के साथ एक सिपाही की किर्च लेकर उससे अपना गला काट डाला है ! उसने यह काम इतनी फुर्ती के साथ किया है कि जो लोग उसकी निगरानी के लिये तैनात थे, उनका ध्यान तब उसकी खुदकुशी की हर्कत पर गया, जब कि किर्च उसकी आधी गर्दन को काट चुकी थी ! ”

लाटसाहब कहने लगे,—“ आखिर सब किश्तियां सुबह तक के लिये वहीं रोक दी गईं, और साथ के डाकृर साहब ने जब उसके जख्म को देखा, तब वह बेजान पाया गया ! यही तो उसकी खुदकुशी का हाल है, और इसी बखेड़े से मेरे यहां पहुंचने में एक दिन की देर हुई । उसकी लाश संदूक में बंद है; अब आप उसे उसके वारिसों को देकर उसे फुंकवा दे सकते हैं । ”

हीराचन्द,—“अफसोस है कि उसने बुरी तरह अपनी जान दी । ”

अमीचन्द,—“उसे इस बात का तो गुमान था ही नहीं कि आप उस पर रहम करेंगे और उसके भयानक सलूक के बदले उसके साथ बड़ी भलमंसी के साथ पेश आवेंगे !”

लाटसाहब,—“बस, यही सबब है कि उसने अपनी जान का फैसला अपने ही हाथों कर डाला; क्यों कि वह जरूर यह बात समझता होगा कि 'मैं अपने कसूरों के एवज़ में बुरी तरह से हलाल किया जाऊंगा ।' और होना भी यही चाहिए था !”

रामानन्द,—“ठीक है, यही सबब उसकी आत्महत्या का है । ”

लाटसाहब,—“एक बात और है; रामलोचन के मरने पर उसकी तलाशी लेने से उसके जेब से एक बंद लिफाफा पाया गया, जिसे खोलकर मैंने पढ़ा । वह फारसी में लिखा हुआ है और उसमें रामलोचन ने इस मुकद्दमे और अपनी नमकहरामी का पूरा हाल लिखा है । उसे पढ़कर मेरे तो होश जाते रहे कि, 'एं ! क्या

दुनियां में ऐसे ऐसे नमकहराम हरामजादे भी पैदा होते हैं ?' खैर ! आज अब आपलोग उसके फूंकने का इन्तज़ाम करें। कल मैं आपलोगों को उस बड़े दर्बार में, जो कि कल उसके मुकद्दमे के बारे में होनेवाला है, उसके लिखे हुए इजहार को दिखलाऊं और सुनाऊंगा; इस लिये अभी वह काग़ज़ मेरे ही पास रहे।"

यह सुनकर सब कोई साहब से बिदा होकर अपने डेरे पर लौट आए और रामलोचन की लाश गङ्गा किनारे भेजी गई।

उन्तीसवां परिच्छेद.

"सती बिन पति के नाहिं जिये"

"जीवति जीवति नाथे,
मृते मृता या मुदा युता मुदिते ॥
सहजस्नेह रसाला,
कुलवनिता केन तुल्या स्यात् ॥"

(शार्ङ्गधरस्य.)

डेरे पर वापस आने पर सब लोग आपस में इस बात की सलाह करने लगे कि, 'दीवान की आत्महत्या का समाचार उसकी स्त्री जमना से जाकर कौन कहे !' निदान, बहुत कुछ तर्क-वितर्क होने पर इस काम का भार रामानन्द ने लिया, और जाकर बातों ही बातों ऐसे ढंग से दीवान की आत्महत्या का हाल जमना से कहा कि जिसमें वह जानै कि, 'ये लोग मेरे ऐसे अधमपति की आत्महत्या पर बहुत अफ़सोस करते हैं !'

हाय ! रामलोचन का मरना सुनकर जमना और सुकुमारी की जो कुछ दशा हुई, उसका न लिखना ही अच्छा है।

एक पहर भर तक रोने-पीटने के बाद जमना और सुकुमारी को लिये हुए रामानन्द घाटपर पहुंचे, जहां पहिले ही से चिता बनाई गई थी और रामलोचन की लाश गङ्गाकिनारे एक देवदार के बकस में रक्खी हुई थी।

निदान, फिर तो जमना ने अपने हाथ से अपने पति को चिता पर सुलाकर उसमें आग लगा दी और उसकी फेरी देने लगी। उसके कहने से सुकुमारी को पकड़कर रामानन्द दूर जा बैठे थे

और साथ के दूसरे लोग भी रामानन्द ही के पास थे। केवल दहकती हुई चिता के पास जमना ही थी।

जब चिता बड़े जोर शोर से धकधक करने लगी, तब जमना ने एक बेर सुकुमारी की ओर स्नेहभरी दृष्टि से देखा और फिर वह इतनी फुर्त्ती के साथ चिता पर चढ़ अपने पति की अधजली लाश से लिपट गई कि लोगों के होश जाते रहे!

बेचारे रामानन्द यह देखकर जब तक 'हां हां' करें और दौड़ें, उतनी देर में तो जमना अपना काम कर गुजरी थी। फिर केवल हाय हाय करने से क्या होता था? देखते देखते चिता ने दोनों को बात की बात में जलाकर राख कर डाला!

हाय, बेचारी सुकुमारी भी अपनी मां को चिता में कूदती देख आप भी उसमें गिरने के लिये झपटी थी, पर रामानन्द ने उसे थाम लिया। हम इस बात के लिखने में असमर्थ हैं कि आज की घटना, अर्थात् अपने माता-पिता के इस प्रकार मरने से बेचारी सुकुमारी के सुकुमार कलेजे पर कैसी बीती होगी!

यद्यपि सतीदाह की चाल उस समय के बहुत पहिले ही से उठा दी गई थी, पर तौभी जो सती हैं, वे क्या कभी रुक सकती हैं! लोग उन्हें रोकने की हजार कोशिश करते हैं, पर जो सती हैं, वे पति के मरने पर किसी न किसी तरह अपने प्राण देही डालती हैं। यद्यपि जमना ने अपना सतीपन निबाहा, और यद्यपि असावधानी के कारण रामानन्द उसे जलती चिता में कूदने से न बचासके, पर तौभी इसमें उन बेचारे रामानन्द का कोई अपराध नहीं था; क्यो कि अपनी ओर से सबों को बेफिक्र करके ऐसी चालाकी और होशयारी से जमना ने यह काम किया था कि कोई भी उसे उसके काम से रोक न सका! जमना यह बात बखूबी जानती थीं कि, 'यदि लोग मेरे सती होने के मतलब को जान जायंगे तो होशियार होजायंगे और तब मैं अपनी इच्छा कदापि

पूरी न कर सकूंगी।' इस लिये उसने ऐसी चतुराई की थी।

जमना के सती होने का हाल जब लाटसाहब ने सुना तो वे बहुत नाराज़ हुए। यद्यपि लोगों ने उन्हें यह बात भलीभांति समझा दी कि, 'यह कार्रवाई बड़े धोखे में हो गई;' पर वे यही कहते रहे कि, 'हिंदुलोग बड़े बेदर्द हैं और उनके यहां का यह रसम (सतीदाह) बड़ा ही ख़ौफनाक है!'

तीसवां परिच्छेद.

"रे मन ! यह कौतुक जग केरो !"

"अयमविचारितचारुतया, संसारो भाति रमणीयः ।
अत्र पुनः परमार्थ दृशा, न किमपि सारमणीयः ॥"

(सुभाषितस्य)

आज मुंगेर में बड़ी धूमधाम है ! बड़े तड़के ही से दूर-दूर और आसपास के ग्रामवाले आ आ कर इकट्ठे हो रहे हैं; और लोगों के आने का ऐसा तांता बंध रहा है कि लोग टिड्डीदल की भांति उमड़े चले ही आ रहे हैं ! परन्तु ये लोग कौन हैं और क्यों आते हैं ? इसका कारण सुनिए,—

राजा हीराचन्द के पुनर्जन्म लेते और दीवान रामलोचन के गिरफ्तार होते ही ब्रह्मचारी रामानन्द ने राजा हीराचन्द की सारी जिमीदारी में दौरा करके सब प्रजाओं को उनके राजा के मौत के पंजे से छुटकारा पाने की खुशखबरी सुनाई थी, और नियत दिन सभों को इकट्ठे होकर दीवान के मुकद्दमे की कैफियत देखने और बहुत दिनों पीछे अपने राजा के दर्शन करने का न्योता दिया था ।

वह नियत दिन आज ही है और उसी बुलावे के कारण ही झुंड के झुंड प्रजालोग आ-आ कर गङ्गाकिनारे के उस बड़े भारी मैदान में, जो कि इसी मुकद्दमे के लिये नियत किया गया था और जहां पर बड़े-बड़े शामियाने खैंचे गए थे, करीने से जमा होने लगे । भीड़भाड़ में किसी तरह का फसाद न हो, इसलिये पचास गोरे, जो लाटसाहब के हमराह थे, अर्थात् जिनके पहरे में दीवान लाया गया था; दो सौ कानिस्टेबिल और पांच सौ राजा साहब के गांव के लठैत करीने से खड़े होकर उस भीड़ की निगरानी

कर रहे थे।

उन खेमों के बीचोबीच एक आलीशान खेमा खड़ा किया गया और वह शाही दर्बार की भांति सजाया भी गया था। उसमें बेशकीमत कालीन के ऊपर कुर्सियां बिछाई गई थीं, और सब कुर्सियों पर नंबर चिपके हुए थे कि जिसमें जिनके लिये जो कुर्सी मुकर्रर की गई है, उसके पहिचान लेने में किसीको तरद्दुद न हो।

उस दर्बार में शामिल होने के लिये शहर के रईस और गांव के प्रधान प्रधान लोग निमंत्रित किए गए थे, और उसी दर्बार में सबके सिरे पर, जरा ऊंचे चबूतरे पर मखमली कालीन के ऊपर बेशकीमत कुर्सियां बिछाई गई थीं। वह जगह केवल लाट-साहब, राजा हीराचन्द तथा अंगरेज़ों के बैठने के लिये ही संवारी गई थी। उस चबूतरे के पीछे चार हाथ ऊंचे मचान को खूब आरास्ता करके चिकें लटकाई गई थीं, और उनके अंदर सुकुमारी मोहनदेई तथा भले घर की स्त्रियों के बैठने का इन्तजाम किया गया था।

यद्यपि रामलोचन की आत्महत्या होने के कारण इस मामले का पूरा आनंद जाता रहा था, और यद्यपि लाट साहब अब दीवानवाले पत्र को, जो कि उसके जेब में से पाया गया था, राजा हीराचन्द को देकर कलकत्ते लौट जाया चाहते थे, पर रामानन्द के उद्योग के कारण जो दिन इस मुकद्दमें के लिये नियत किया था, उस दिन बड़े भारी हजूम के इकट्ठे होने के कारण दर्बार करके ही रामलोचन की कर्त्तूत जाहिर करने का बिचार किया गया।

ठीक दस बजे तक उस खेमें के बाहर-भीतर पांच हजार आदमी इकट्ठे हो गए थे, और चिक के अन्दर सैकड़ों स्त्रियां भी आ जमीं थीं। यद्यपि सुकुमारी रामलोचन और अपनी मां के दुःख से अधमरी सी हो रही थी, और उसकी इस दर्बार के

देखने की रत्तीभर भी इच्छा न थी, पर ब्रह्मचारीजी ने बहुत कुछ समझा बुझा कर उसे भी उस चिक के अंदर ला बैठाया था, और उसके साथ उसे ढाढ़स देने के लिये मोहनदेई भी आ बैठी थी।

ठीक साढ़े दस बजे राजा हीराचन्द के साथ लाटसाहब की सवारी पहुंची, उस समय दर्शक-मंडली ने बड़े जोर से इष्ट-इंडिया-कंपनी, लाटसाहब और राजा हीराचन्द की जयजय-कार मनाई। ब्रह्मचारीजी दर्बार में पहिले ही से मौजूद थे, उन्होंने अगवानी करके लाटसाहब को दर्बार वाले चबूतरे की कुर्सी पर ला बैठाया, उनके बैठने पर करीने से और और अंगरेज़ तथा राजा हीराचन्द बैठ गए।

राजा हीराचन्द के इलाके की जो प्रजाएं और प्रधान लोग थे, उनके खुशी का वारापार न था! इतने दिनों पर, जिसे मरा हुआ समझते थे, अपने उस मालिक जिमीदार को जीता-जागता देखकर उनलोगों ने कई बार बड़े जोर से जगदीश्वर की जयजयकार मनाई। आधे घंटे तक बड़ा शोर गुल रहा, पर दर्बार के बीच में हाथ उठा कर रामानन्द के खड़े होते ही सारी भीड़ में ऐसा सन्नाटा छा गया कि सूई गिरने तक की आवाज भी आसानी से सुनी जा सकती थी।

सन्नाटा होने पर रामानन्द ने कहा,—"आज हमलोगों को जगदीश्वर, और इष्ट इण्डिया कंपनी के लाट साहब का गुणा-नुवाद करना और प्रसन्न होना चाहिए कि हमारे वह जिमीदार राजा हीराचन्द, कि जिन्हे लोग मुद्दत से मरा हुआ समझते थे, और जिनकी मिलकियत को दीवान रामलोचन दखल कर बैठा था, सर्वसाधारण के आगे जीते जागते मौजूद हैं!

"आज की खुशी का वारापार नहीं है और इस खुशी के कारण हमारे श्रीमान लाट साहब बहादुर ही हैं, अतएव हमलोगों

को सच्चे चित्त से श्रीमान का परमकृतज्ञ होना चाहिए।

"यद्यपि आज के दर्बार में इस मुकद्दमें का, जो कि अभी पेश होगा, प्रधान और एक मात्र असामी रामलोचन अब संसार में नहीं है, पर तौ भी सर्वसाधारण की प्रबल उत्कंठा मिटाने के लिये उसके भयानक कुकर्म की सारी कहानी कही जायगी; पर जब कि अब रामलोचन जिन्दा नहीं है और अपने कुकर्मों का फल परलोक में पाता होगा, तब उसके लिये अब खोटे शब्दों का बर्त्ताव न किया जायगा; क्योंकि मरे व्यक्ति के लिये खोटे शब्दों का प्रयोग करना अयोग्य और अनुचित है।

"राजा हीराचन्द की सारी जीवनी और रामलोचन की सारी कर्त्तूत के जाहिर करने के लिये हमारे पास चार चीज़ें ऐसी हैं कि जिनसे इस मामले का सारा रहस्य प्रगट होजायगा।

"उसमें से दो तो कागजों के वे बण्डल हैं, जो रामलोचन की गुप्तकोठरी में से पाए गए; इन दोनों के अलावे एक मानिकचन्द का तावीज है और एक पत्र है; जो कि रामलोचन की लोश की तलाशी लेने पर उसके जेब में से पाए गए हैं।

"सबके पहिले मैं एक बात कहकर इस दर्बार का चित्त अपनी ओर खैंचता हूं—और उस बात का प्रमाण भी साथ ही हुजूरआली लाटसाहब बहादुर के रूबरू पेश करता हूं।"

यों कहकर रामानन्द ने चिक की ओर और मानिक की ओर देखा और सारे दर्बार की ओर आंख फेरकर कहा,—"आज तक लोगों का यही खयाल रहा है कि, 'राजा हीराचन्द के पुत्र मानिकचन्द और रामलोचन की पुत्री सुकुमारी बीबी हैं।' किंतु नहीं, ऐसा नहीं है; बरन सच्ची बात तो यह है कि राजा हीराचन्द की ही लड़की सुकुमारी है, और***"

ब्रह्मचारीजी इतना ही कहने पाए थे, कि चारों ओर से "जय, राजकुमारी जी की जय" का हल्ला होने लगा करीब पांच मिनट

तक यही शोरगुल रहा, पर रामानन्द के हाथ उठाते ही फिर पहिले ही की भांति चारों ओर सन्नाटा छा गया।

ब्रह्मचारी ने जो सुकुमारी को राजा हीराचन्द की कन्या बतलाया, इसे सुनकर सबसे अधिक आश्चर्य सुकुमारी, हीराचन्द और मानिक को हुआ; क्यों कि ये लोग भी इस रहस्य का रत्ती भर भेद नहीं जानते थे!

हीराचन्द ने आश्चर्य के मारे घबराकर कहा,-"क्यों ब्रह्मचारीजी! क्या यह बात सही है? और यदि है तो आपने आज तक यह बात मुझ से कही क्यों नहीं?"

ब्रह्मचारी ने कहा,—"यह बात उतनी ही सच्ची है, जितना कि ईश्वर का होना सत्य है; पर इसका भेद मुझे तब मालूम हुआ, जब कि गिरिजा के मरने पर मानिकचन्द का तावीज़ मैंने पढ़ा! मैं इस बात पर जोर देकर कह सकता हूं कि इस रहस्य का भेद संसार में गिरिजा के अलावे कोई भी नहीं जानता था। यहां तक कि रामलोचन और उसकी स्त्री भी इस भेद से पूरे अनजान थे। तो गिरिजा ने इस भेद को क्यों छिपा रक्खा था? इसका सबब है, जो अभी मैं प्रगट करूंगा।"

लाटसाहब,—"और मानिकचन्द किसका लड़का है?"

ब्रह्मचारी,—"यह भी क्षत्री का बालक है, या यों ही साफ साफ क्यों न कहा जाय कि यह गिरिजा की छोटी बहिन मालती का लड़का है, जो इसे जनते ही परलोक सिधार चुकी थी; और इसका बाप अर्थात् मालती का पति उस समय संसार से बिदा होगया था, जब कि मानिक अपनी मां के पेट में था।

ये बातें सुनकर मानिक और सुकुमारी के चित्त का क्या भाव हुआ होगा, इसको हम इस निर्जीव लेखनी से क्योंकर लिखें? और यही बात क्योंकर समझावें, कि इस भेद को सुनकर राजा हीराचन्द के मन का भी कैसा भाव हुआ था!!!

इकतीसवां परिच्छेद.
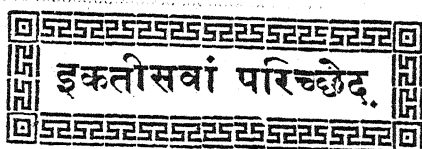
"यह कबहूं नहिं होत सुन्यो !"

"तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशाश्चैव यादृशी भवितव्यता ॥"

(व्यासः)

चार बजने के समय उस दिन दर्बार बर्खास्त किया गया, और दूसरे दिन फिर ठीक समय पर, अर्थात् दस बजे दर्बार हुआ।

यह मुकद्दमा एक दिन में निबटनेवाला न था, इस लिये जितने बाहरी लोग आए हुए थे, उन सभों के डेरे और खाने पीने का पूरा प्रबन्ध किया गया था, और इस बिचित्र लीला के रहस्य-भेद तक लाचार होकर लाटसाहब को भी ठहरना पड़ा था।

दूसरे दिन के दर्बार में ब्रह्मचारीजी ने खड़े होकर यों कहना प्रारम्भ किया,—

"आपलोगों को याद होगा, मैंने कल यह बात कही थी कि, 'मेरे पास चार चीज़ें ऐसी हैं कि, जिनसे इस मामले का सारा रहस्यभेद होजायगा; सो उनमें से पहिले मैं मानिकचन्द के तावीज़ को आपलोगों के रूबरू पेश करता हूं और उसका मतलब भी समझा देता हूं।"

यों कहकर उन्होंने एक तामे के चौखूंटे और दो इञ्च लंबेचौड़े एक मोटे तावीज़ को अपने जेब में से निकाल कर सभों को दिखलाया और उसकी दोनों पीठ पर खुदे हुए अक्षरों का मतलब भी सभों को समझाया। उस तावीज़ का हाल सुनकर सब लोग दंग होगए और मानिक तथा सुकुमारी के दिल का क्या हाल

हुआ, इसे तो वे ही दोनों कह सकते हैं!

हम अपने रसीले पाठकों के मनबहलाव के लिए उस ताबीज़ की दोनों पीठ की नकल नीचे लिख देते हैं और आशा करते हैं कि पाठकलोग इस ताबीज़ के मतलब समझने का स्वयं उद्योग करेंगे और हमसे कुछ न पूछेंगे,—(१)

(यंत्र नं० १)

ग	मा	ज	हा	गि	नी	चां	की
प	ब	ई	म	द	रा	ब	ज
नि	र	दी	से	त	रि	द	नी
में	र	ती	उ	चं	कुं	टी	जा
ल	क	गा	डा	की	ने	रा	व
बे	ल	मा	न	ध	म	टा	बे
को	ते	री	गं	बे	नी	र	ही
म	री	ज	ही	ने	र	री	रा

(१) यह यन्त्र किसी खास नियम के अनुसार लिखा गया है। हमारे रसिक पाठक लोग इसके पढ़ने के लिये जरा श्रम उठावेंगे तो बड़ा आनन्द पावेंगे।

(यंत्र नं० २)

ए	बा	लों	का	द	उ	क	ने
र्ष	न्या	क	जी	म	सा	ब	से
बा	ने	मु	क	है	ला	ना	ई
ख	व	से	मै	थ	ज	ज	से
यों	नी	दे	भ	म	की	व	र
श	ना	कि	वे	छे	ओ	ना	री
ज	सु	शु	ख	ड़	म	रा	र्ष
अ	द	टी	न	नो	पी	ल	की

ऊपर के दोनों यन्त्रों के समझने का तो उद्योग हमारे पाठक लोग स्वयं करें, पर इन दोनों का आशयमात्र गिरिजा के एक पुरजे से भी मिल जायगा, जो कि तावीजवाले डब्बे में ब्रह्मचारी को मिला था, वह गिरजा के हाथ का लिखा हुआ था; उस में वह यों लिखती है कि,—

" यदि कभी कोई मानिक और सुकुमारी के असल हाल जानने की इच्छा करे, या मानिक अथवा सुकुमारी ही यदि कभी अपना असली हाल जानना चाहें; इसीलिये मैंने इस तावीज

की दोनो पीठ पर किसी अच्छे महात्मा से चक्र बनवाकर उसमें सुकुमारी और मानिक का असली हाल लिख दिया है।"

गिरिजा लिखती है कि,—" मालती मानिक को जनते ही मर गई, उसी समय रानी को भी एक मरी बेटी हुई, उसे मैंने गंगा में बहाकर चुपचाप मानिक को उनकी सेज पर डाल दिया, और पीछे मैं ही उस बच्चे को धाय भी बनी। यह काम मैंने एक महात्मा के कहने से किया था। वह बच्चा बड़ा होने पर धाय के नाते से मुझे 'मासी' कह कर पुकारता था, पर यह बात वह बेचारा नहीं जानता था कि, 'यह तो मेरी सगी मासी हुई है!'

" फिर कुछ वर्ष पीछे उन्हीं महात्मा से मुझे यह मालूम हुआ कि, 'अब की बेर रानी को जो सन्तान होगी, उसका मुख दस बर्ष तक राजा को न देखना चाहिए, नहीं तो बड़ा अशुभ फल मिलेगा;' यह सुनकर मैं बहुत घबराई, पर दैवसंयोग से रानी और जमना को साथ ही बालक हुए! जमना ने मरा हुआ बेटा जना था, जो कि रानी के पास सुलाकर उनकी बेटी, जिसका नाम कि सुकुमारी है, जमना की खाट पर मैंने डाल दी। इसलिये कि ऐसा होने से राजासाहब उस कन्या को न देखने पावेंगे; इस बात का उपाय भी मैंने सोच लिया था। यह कार्रवाई भी उन्हीं महात्मा की इच्छा से की गई थी।

" हाय! अब मेरी इस कार्रवाई में चाहे दुनियां मुझे कैसी ही खोटी-खरी सुनावे, पर मैं धर्म की दुहाई देकर कहती हूं कि ये सब काम मैंने एक महात्मा की आज्ञा से बिल्कुल सच्चे जी से किए थे। रानी पुत्र के लिये तरसा और रात दिन रोया करतीं, और यों कहा करतीं कि, 'यदि अबकी बार मुझे बेटा न हुआ तो मैं अपनी जान देदूंगी;' बस, मैंने जो मालती के लड़के से उनकी मरी बेटी बदल डाली, इसका मुख्य अभिप्राय रानी की

आत्महत्या को रोकना ही था !

"दूसरे, रानी की बेटी भी जमना के मरे बेटे से बदलकर उसके हवाले इसी लिए की गई कि जिसमें राजासाहब का मंगल हो। यद्यपि मैंने अपने भरसक इस बात की बड़ी कोशिश की कि जिसमें राजा की नज़र इस लड़की पर न पड़े और मेरे जानते भर में ऐसा ही हुआ भी; परन्तु फिर भी इस घर, या राजा-रानी का सत्यानाश अवश्य इस लड़की के देखने ही से हुआ होगा !

"सुकुमारी के जनने बाद रानी थोड़े ही दिन जीती रहीं। जब उन्होंने देखा कि अब मैं न बचूंगी, तब यह सोचकर कि,—'शायद मेरे मरने पर राजासाहब अपना दूसरा विवाह करें और उस विवाह से बालबच्चे भी हों; फिर मेरे बेटे मानिक को किसी तरह की तकलीफ़ हो तो इससे यही अच्छा है कि पहिले ही से मानिक का कुछ बंदोबस्त करा लिया जाय।' यही सब सोच बिचार कर रानी ने राजासाहब से कहा कि,—'प्राणनाथ ! मैं तो अब तुम्हारे चरणों का दर्शन करती हुई इस संसार से कूच करती ही हूं—इस लिये अब इस चलाचली की बेरा मेरी एक अभिलाषा पूरी कर दो।'

"राजासाहब रानीजी को प्राण से भी अधिक प्यारी समझते थे। रानी की बात सुनकर उनकी आंखों में आंसू भर आए और उन्होंने ठंढी सांस लेकर कहा,—'कहो प्यारी ! तुम क्या चाहती हो ? यदि हमारे प्राण देने से भी तुम्हारी कोई अभिलाषा पूरी हो तो हम अभी उसे पूरी करने के लिये तैयार हैं।'

"इस पर रानी ने कहा,—'प्यारे ! मेरे बच्चे मानिक के लिये कोई ऐसा पक्का बंदोबस्त कर दो कि जिसमें इस बच्चे को पीछे किसी तरह की तकलीफ न हो।'

"अहा ! राजा ने रानी की दूरंदेशी का रहस्य खूब ही समझा; उन्हों ने कहा,—'प्यारी ! तुम अपने जी में यह समझ कर ऐसी बात कह रही होगी कि, 'मेरे बाद मेरे प्राणप्यारे दूसरी शादी

करेंगे, तो उस स्त्री से जो बालक होंगे, वे कहीं मानिक के वाजबी हक पर हकतलफ़ी न करें।' क्यों यही तुम्हारा सोचना है न? किंतु प्यारी! क्या तुम्हें इस बात का विश्वास है कि हम अब जीते दम तक तुमसी प्राणप्यारी से ठगे जाकर फिर नरक भोगने को कभी सपने में भी इच्छा करेंगे? अस्तु। किंतु हम तुम्हारी अभिलाषा अभी पूरी करते हैं।'

"इसके बाद राजासाहब ने अपनी स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति को मानिक के नाम लिख दिया, और एक दूसरा इकरारनामा भी इस मजमून का लिख दिया कि,—'यदि हम कदाचित् किसी कारण से दूसरी शादी करें भी, तो उस औरत से जो लड़के पैदा होंगे, उन्हें मानिक की सम्पत्ति पर किसी तरह का हक जायज़ न होगा।'

"अहा! राजाजी की इस कार्रवाई से मेरी प्यारी मालकिन रानी ने बड़ी खुशी के साथ निगोड़ी मौत को गले लगाया और उनके मरने पर राजासाहब ने उन दोनों कागज़ों के बण्डलों को अपने शयनागार में लोहे की संदूक में बंद कर रक्खा और उस भेद को किसी पर जाहिर न किया।

"रानी के मरने के बरस डेढ़ बरस बाद एक ऐसी सत्यानाशिनी घटना हुई कि जिससे बच्चे मानिक का भाग्य ही लौट गया।

"बर्सात का दिन था, राजासाहब बड़े जलूस के साथ सौंताल पर्गने के जंगल में शिकार खेलने गए थे। उनके जाने के तीन चार दिन बाद उनके साथ के सब आदमी रोते पीटते राजमन्दिर पर लौट आए, और दीवान रामलोचन ने यह बात सबसे कही कि, 'रात को एक भयानक सिंह महाराज को उठा ले गया था, सुबह खोज करने पर उनकी हड्डी पसली और खून से तराबोर कपड़े पाए गए। उनके हाड़ मास जो कुछ मिले; वे ज़ंगल ही में फूंक दिए गए!' इत्यादि।

"हाय इस खबर को सुनकर, नारायण जानता होगा कि उस समय मेरी क्या दशा हुई होगी! पहिले तो मैंने इस घटना को सच समझा, पर जब महाराज की श्राद्धक्रिया आदि सब काम धूमधाम से होगए, तब रामलोचन ने मुझे बुलाकर कहा कि,— 'चौबीस घंटे के अन्दर तुम मानिक को साथ लेकर इस घर से निकल जाओ; क्यों कि महाराज ने अपनी सारी सम्पत्ति मुझे लिख दी है, और मानिक को अपनी बदचलन रानी का जारज पुत्र समझकर उसे अपनी सारी सम्पत्ति से अलहिदा किया है;' इत्यादि।

"हाय! इस बात के सुनते ही मेरे ऊपर बिजली घहरा पड़ी! मैं खड़ी थी, धड़ाम से जमीन में गिर कर बेसुध सी होगई! मेरी आंखों तले अंधेरा छा गया, और सारा जगत चक्कर की तरह घूमता हुआ जान पड़ने लगा! कब तक मेरी यह दशा रही, यह तो मुझे नहीं मालूम; पर जब मुझे होश हुआ तो मैंने बच्चे मानिक को अपने पास पड़े रोते पाया और उस जगह हत्यारे दीवान को न देखा।

"हाय! जिस रानी को राजा प्राण से भी बढ़कर प्यार करते थे, जिसके मन रखने के लिये उन्होंने यहां तक त्याग स्वीकार किया कि अपनी सारी सम्पत्ति मानिक को लिख अपनी दूसरी शादी से (यदि कदाचित ऐसा हो तो) होनेवाले लड़कों को भी उस सम्पत्ति से खारिज किया; हाय! क्या वे ही राजा अपनी सती रानी के ऊपर ऐसा खयाल कभी कर सकते थे? इन बातों को बहुत देर तक सोचने पर मेरे दिल ने यही गवाही दी कि यह सारी नमकहरामी हरामजादे दीवान ही की है। उसी हत्यारे ने धन के लोभ में पड़ कर राजा को मार डाला है, और नकली विल बनाकर उनकी सारी दौलत लेना और मानिक को बेदखल करना चाहता है, इत्यादि।

" उस समय राजाजी के गुरु वा कुलपुरोहित आचार्य रामानन्द ब्रह्मचारीजी बद्री-केदार की यात्रा को गए हुए थे। बस अपना उस समय कोई सहायक न पाकर मैं राजा के शयनागार की लोहे वाली संदूक में से राजा के लिखे हुए दोनो विल ले, चुपचाप मुंगेर का मुंह काला कर भागलपुर में ब्रह्मचारी के घर पहुंची और उनके आने तक वहीं रही।

" किन्तु जब करम खोटा होता है तो सब सामान वैसे ही उलटे होजाते हैं ! डेढ़ बरस बाद ब्रह्मचारीजी यात्रा से लौटे, पर बहुत ही बुरी दशा में, अर्थात उनमें कुछ पागलपन आ गया था। यह दशा देख मैं वहांसे मानिक को साथ ले फिर मुंगेर आई, और यहां आने पर देखा कि गंगा किनारे वाले विशाल राजप्रासाद को कंबख्त दीवान ने तोड़फोड़ कर मटियामेट कर डाला है और राजा के बागवाली छोटी इमारत में अपनी घर गृहस्थी लेकर रहता है !

" निदान, लाचार होकर मैं इसी खंडहर में रहने लगी। अब आगे क्या हो, यह नारायण के हाथ है; पर मैंने यह जान कर, इस पुर्जे को तावीज के साथ लिख कर इस डब्बे में बंद कर रक्खा है कि यदि ब्रह्मचारीजी का कभी पागलपन दूर होगा तो उनके हवाले करूंगी, या मानिक के होशियार होने तक यदि मैं जीती रही तो उसे दूंगी; आगे राम मालिक हैं, इसके अलावे अब गिरिजा और क्या कर सकती है ? "

गिरिजा की चीठी जब ब्रह्मचारीजी पढ़ रहे थे, उस समय सारी भीड़ में गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। उस चिट्ठी और यन्त्र के झमेले को समाप्त करके उन्होंने कहा,—

" आपलोगों से यहां पर इतना मैं और कह देना उचित समझता हूं कि उस यात्रा से लौटने पर पांच छः बरस तक मेरा चित्त विक्षिप्त सा रहा, फिर ईश्वर की दया से मैं धीरे धीरे

अपनी असली हालत पर आया। तब मैं गिरिजा और दीवान से मिला। सब हाल सुनकर मेरे चित्त पर जो कुछ बीता, उसे जी ही जानता है! मैं दीवान को बहुत भला समझता था, पर इस कार्रवाई के सुनने से मेरा जी उससे हट गया और राजासाहब की मौत के बारे में मुझे भी संदेह होने लगा। उस समय मेरा सन्देह और भी पक्का होगया, जब मैं रामलोचन की भली स्त्री जमना से मिला और दीवान की सारी करतूतों का भेद जाना। यदि जमना से मेरी भेट न होती या वह मुझे बहुत से भेदों की बातें न बताती, अथवा मदद न करती तो मैं राजासाहब को कैद से कभी न छुड़ा सकता। राजा साहब के जीते रहने का मुझे इसलिये विश्वास था कि, आप की जन्मपत्री में दीर्घायु होना लिखा था और आप किसी के हाथों मारे जाने वाले नहीं थे। पर यह हाल मैंने जमना से छिपा रक्खा था, क्योंकि उस समय मैंने यही बात ठीक समझी थी। यद्यपि रामलोचन ने राजासाहब की सारी सम्पत्ति अपने काबू में कर ली थी, और मेरे साथ बड़ी भलमनसी से पेश आता था, पर मैं भी जाहिरा उससे मिला रह कर भीतर ही भीतर कुढ़ता और राजासाहब की मौत के बारे में खूब छान बीन करता था।

"गिरिजा ने जीते जी उस तावीज, या इकरारनामें वगैरह का कोई हाल मुझ पर जाहिर नहीं किया था; शायद वह मुझे पागल ही समझती हो, पर उसके मरने पर ये सब हाल मुझे मालूम हुए।"

बहुत अतिकाल के होजाने से उस दिन का दर्बार भी बर्खास्त किया गया, और सब लोग दीवान की नमकहरामी के आखिरी हाल के सुनने की लालसा मन ही में दबाकर अपने अपने डेरे पर गए।

बत्तीसवां परिच्छेद.
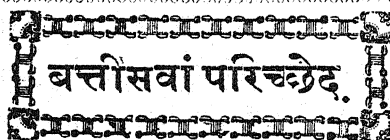
" माधो ! मैं पतितन को राजा ! "

"विषमा मलिनात्मानो द्विजिह्वा जिह्मगा इव।
जगत्प्राणहरा नित्यं कस्य नोद्वेजकाः खलाः॥"

(हरिगणस्य.)

(रामलोचन का पत्र)

तीसरे दिन के दर्बार आरंभ होने पर ब्रह्मचारीजी ने रामलोचन की आत्महत्या और उसके लिखे हुए पत्र के पाने का हाल कह कर उसके पत्र को पढ़ना प्रारंभ किया। उसने अपने पत्र में यों लिखा था,—

" हा! हा! मैं घोर पापी हूं। मेरे भयानक पापों का प्रायश्चित्त भी नहीं और मेरा कभी नरक की सांसत से उद्धार भी नहीं ही होगा ! हा ! स्वामी के संग जैसा विश्वासघात और नमकहरामी मैंने की, उसके बदले में क्या सुख भोगा और अन्त में क्या नतीजा पाया, इसे देखकर मेंरे ही स्वभाव वाले लोग जरा सावधान होजायं; क्योंकि किसीने सच कहा है कि,—

" कलजुग नहीं करजुग है यह, यां दिन को दे औ रात ले।
क्या खूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे, उस हाथ ले।'

" हा ! बड़ी ही खोटी सायत में हुसैनी के साथ मेरी जान पहिचान हुई थी, और यह बात सच ही होगई कि,—' तुख़्म-तासीर, सोहबतअसर !!!'

''हुसैनी मुर्शिदाबाद के नव्वाब के यहां किसी अच्छे काम पर था; पर वह कंबख़्त अपनी बदचलनी के सबब वहांसे भागा। नव्वाब के महल की किसी औरत के साथ उस नालायक की

आशनाई होगई थी । यह बात सही है कि,—'लगी नहीं छिपती;' सो पर्दाफाश होगया और हुसैनी के कत्ल का हुक्म हुआ; मगर उसे खबर लग गई, इससे वह वहांसे भागा और मेरा साढ़ेसाती सनीचर बनकर मुझसे आ मिला !

"मेरे दयावान और सज्जन स्वामी राजा हीराचन्द मुझपर बड़ी कृपा रखते थे और वैसा ही सहेलीपने का बर्त्ताव उनकी सुशीला रानी साहबा मेरी सती स्त्री जमनाकुंवर के साथ रखती थीं । मैं सुख की नींद सोता और अपने प्रभू की बढ़वार ही मनाया करता था; मगर अफ़सोस ! साक्षात् शैतान हुसैनी की शैतानी का असर धीरे-धीरे मेरे रोम-रोम में ऐसा भींग गया कि मैं खासा शैतान क्या, बल्कि शैतानों का किबलेगाह बन गया और फिर जो कुछ मैंने शैतानी का काम किया, अब उसके खयाल करने से भी मेरी रूह कांप उठती है । हाय ! अफ़सोस ! ! !

"धीरे-धीरे मैं हुसैनी का पूरा गुलाम बन गया और राजा हीराचन्द के ऊपर हाथ सफ़ाई का मौका ढूंढ़ने लगा; मगर शैतान का काम क्या कभी रुका है ? बस चट बर्सात में राजासाहब सौंताल-पर्गने में शिकार खेलने गए थे, वहीं जङ्गल में अकेला पाकर हुसैनी ने उन्हें बेकाबू करके सन्दूक में बन्द किया और एक निरपराधी सौंताल को मार, उसके खून में राजा के कपड़े रंग, उसीके हाड़ मांस को राजा का बतला और यह जाहिर कर कि, 'राजा को शेर ने मार डाला,' उसी जंगल में उनका नाम-निशान मिटा दिया ।

"फिर हुसैनी की हिफ़ाजत में छिपा लुकाकर संदूक में बंद राजासाहब मुंगेर लाए गए और अजायबघर में कैद किए गए । उनके कैद कर लेने पर पचासों राजकर्मचारियों को, जिन्होंने कि मेरी अधीनता नहीं मानी, उसी आजायबघर में लेजाकर कइयों को मैंने, और बहुतों को हुसैनी ने, मार डाला, जिनके कङ्काल

अभी तक वहां मौजूद हैं । हा ! आखिर एक दिन कम्बख्त हुसैनी भी मारा गया और मैं अब अपना काम आप तमाम किया चाहता हूं !

"यद्यपि ये सब काम मैंने किए, पर न जाने क्यों, मेरा कलेजा रह रह कर इस कदर कांपता था कि न तो मैंने राजा को बेकाबू करने में हाथ बढ़ाया और न अजायबघर में कैद करने पर बहुत दिनों तक मैं उनके सामने ही गया । हुसैनी बारबार मुझे यही सलाह देता था कि, 'हीराचन्द को मार डालना ही अच्छा है,' मगर न जाने क्यों, (सो ईश्वर ही जाने) उसकी इस राय पर मैं कांप उठता और यही जवाब देता कि, 'नहीं, नहीं; ऐसा नहीं होगा; वह आप ही कैदखाने की तकलीफ़ से कुछ रोज में मर जायगा ।' मगर यह कौन जानता था कि दस-बारह बरस जमीन के अन्दर कैद की तकलीफ़ झेलकर भी राजा हीराचन्द यों एकाएक धर्त्ती के ऊपर प्रगट होजायंगे और मैं यों अपनी करनी का फल पाऊंगा ! ! !

"राजासाहब का विशाल राजप्रासाद गंगाकिनारे से उस अजायब घर तक फैला हुआ था, जिसमें कि अब मेरी गृहस्थी रहती है; मगर उस अजायबखाने (१) का हाल इतना पोशीदा था, कि राजासाहब अपनी रानी पर भी शायद नहीं जाहिर करते थे, तो मेरी क्या हकीकत थी ! पर हुसैनी कंबख्त एक ही हरामी था, उसने मुझे अजायबघर के हाल जानने पर इतना उभारा कि आखिर मैंने उसके हाल दर्याफ्त करने का भार हुसैनी ही पर दिया । वह भी एक ही शैतान था, आखिर उसने नई तालियां बनाकर अजायबघर को खोला और फिर हमदोनों ने मिलकर

(१) पाठकों ने तो इस अजायबघर की सैर कर ही ली है, जो कि पीपल के पेड़वाला था, और बाग की बारहदरी से सम्बन्ध रखता था ।

जहांतक हांसका, उसकी सैर की और वहांकी बेशुमार दौलत देखी!

"मगर फिर भी, वहां पर के कई अजीब मामले मेरी समझ में न आए! एक तो उस कोठरी का हाल मैंने न जाना, जिसमें कि एक पुतला तलवार लिये खड़ा था और उसमें पैर रखते ही वार करने पर तैयार होजाता था! दूसरे, एक कुएं पर ढंकी हुई ताम्बे की चद्दर का पता भी मुझे न लगा कि उसके अंदर क्या है और उसके छूने से क्यों बेहोशी पैदा होती है! बस, इसी भांति और भी कोई चीज़ उस अजायबघर में ऐसी रही होगी, जिसका भेद मुझे न जान पड़ा होगा!

"राजा हीराचन्द को कैद कर लेने पर मैंने उनके खाने पीने के लिए कभी कुछ भी नहीं भेजा, क्यों कि मैं बिना दाना पानी ही उन्हें मार डालना चाहता था; पर जब मैं, या हुसैनी, वहां गए, तब उन्हें हट्टे कट्टे तन्दुरुस्त और हाथ में तलवार लिये हुए टहलते पाया। यद्यपि मैं बेशर्म बनकर उनके सामने गया भी, पर उन्होंने मेरी ओर देखकर थूका और नज़र फेरकर वहांसे वे उस कोठरी के अंदर चले गए, जिसमें वह तलवार-बहादुर पुतला था! हुसैनी से भी वे कभी नहीं बोले और न कभी हमलोगों से अपनी खलासी के लिये उन्होंने कुछ कहा!

"मैंने और हुसैनी ने भी, यह ढंग देखकर बड़ा ताज्जुब किया और इस भेद को आजतक न समझा कि वे क्या खाते पीते थे और क्योंकर जीते थे! यद्यपि मेरी राय न थी, पर हुसैनी ने अपनी इच्छा से बहुत कोशिश की कि हीराचन्द को मार डाले; पर वे इतने होशियार रहते थे, और कभी कभी न जाने कहां गायब होजाते थे, कि आख़िर उन पर हुसैनी की घात नहीं लगी और फिर इस डर से कि, 'कहीं हम्हींलोगों को वे न मार डालें, हमलोग पीपल के पेड़ वाली राह से ताम्बे के छींके पर बैठकर उस अजायबघर के अंदर जाते थे, क्यों कि इस तरह जाने में खतरा

कम था। हां! इतना अवश्य था कि यदि हमलोग कभी वहांसे कुछ जर, जवाहिरात, अशर्फियां या कोई और चीज़ पर हाथ डालते तो राजासाहब फकत "खबर्दार!" कहकर तीर मारने का डर दिखलाते! बस, हमलोग आजतक वहांसे एक सींक भी नहीं लेने पाए; मगर ताज्जुब है कि उन्होंने हमदोनों में से एक को, या दोनों को, मार क्यों नहीं डाला? क्यों कि यदि वे चाहते तो ऐसा कर सकते थे। उस अजायबघर में अजीब सिफत थी कि कैदी तो बिना कुछ खाए पीए बेफिक्र उसमें घूमे, और कैद करने वाला ही हर बार उससे अपने तईं बचाता रहे! मगर यह बात क्या थी, सो आजतक हमदोनों की समझ में न आई!

"अब लोग यह पूछ सकते हैं कि, 'जब राजासाहब में कैद होने पर भी इतनी ताकत थी तो वे उस कैदखाने में इतने दिनों तक रहे क्योंकर?' इसका जवाब, जहां तक मैं समझता हूं, यही होसकता है कि, 'चाहे राजासाहब कैद में किसी ताकत के सबब से इतने बर्षों तक जीते रहे हों, पर उस अजायबघर से निकल जाना ज़रूर उनकी ताकत के बाहर रहा होगा! इसका सबब शायद यही होसकता है कि उस अजायबखाने के अंदर उसकी दूसरी ताली न रही होगी! क्यों कि उस अजायबघर की तालियों का गुच्छा, जो कि राजासाहब के साथ ही साथ लोहे की संदूक में रहता था, उनके कैद कर लेने पर मैंने उसे अपने तहत में कर लिया था। फिर उसी गुच्छे की तालियों से मैंने काम लेना प्रारम्भ किया, और हुसैनी की बनाई तालियों को बेकार समझ कर तोड़ फोड़ डाला। मुझे ब्रह्मचारी से बहुत खटका था, इसलिये जब वह तीर्थ करने जाने लगा था, तब मैंने एक आदमी उसके पीछे लगा दिया था। उस आदमी ने ब्रह्मचारी को धतूरे के बीज खिला खिलाकर पागल बना डाला, इसलिये जब वह तीर्थ करके लौटा तो खासा पागल होगया था; मगर कुछ बरसों के बाद फिर होश में आने

पर तो उसने वह खेल खेला, कि वाह !

"मानिक को मैंने बच्चा समझकर राज्य से बेदखल कर निकाल बाहर किया और गंगाकिनारे वाली इमारतों को मटियामेट कर इसी अजायबघर-वाले बाग या मकान में अपनी गृहस्थी लेकर मैं रहने लगा। फिर कुछ दिन पीछे गिरिजा मानिक को लेकर मुंगेर में आई और खण्डहर में रहने लगी। यद्यपि हुसैनी ने बहुत चाहा कि मानिक या गिरिजा को मार डाला जाय, मगर मैंने इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

"कुछ दिनों के बाद हुसैनी ने यह पता लगाया कि, 'राजा हीराचन्द ने कोई वसीका मानिक के नाम लिख दिया था, जो कि गिरिजा के कब्जे में है, और उसे वह खंडहरवाले तहखाने में लोहे को सन्दूक में रक्खे हुई है!' इस खबर के पाते ही सुरंग के रास्ते से भीतर ही भीतर जाकर मैंने उन कागजों को उड़ा कर अपने हाथ में किया, पर उन्हें फूक क्यों न डाला, यह मेरी मूर्खता थी! उसके बाद गिरिजा मरी और हुसैनी ने रामानन्द बन और छिपकर वे सब हाल सुने, जो कि उसने मरती बार मानिक से कहे थे। फिर उसे हुसैनी ही ने फूका भी; मगर न जाने कहांसे दूसरे दिन रामानन्द आ पड़ा और फिर क्या हुआ, इसका हाल तो वह खुद भी कह सकता है।

"अब मैं कुछ भी नहीं कहा चाहता, सिवा इसके कि मेरी नमकहरामी के सारे हालात संसार में सर्वसाधारण के आगे जाहिर किए जायं और आत्महत्या अगर मैं कर गुजरा तो मेरी मिट्टी गङ्गा में जरूर बहा दी जाय; क्योंकि यद्यपि मेरा निस्तार प्रलय तक नरक से न होगा, पर फिर भी मुझे श्रीगंगा माता की इस अलौकिक महिमा पर अपने लिये भी कुछ भरोसा होता है कि,—'जेते तुम तारे, तेते नभ में न तारे हैं!!!'

नरराक्षस,—रामलोचन।"

तेंतीसवां परिच्छेद.

"करमगति टारे नाहिं टरै !"

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ,
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्त्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥"

(माघस्य)

रामलोचन का खत पूरा करके ब्रह्मचारीजी बैठ गए। तब हीराचन्द ने उठकर यों कहना प्रारम्भ किया,—

"इसके बाद जो कुछ मेरी जीवनी का बचा हुआ हिस्सा है, उसे मैं अभी पूरा करके आपलोगों से बिदा होता हूं,—

"लगभग बारह-तेरह वर्ष के हुआ,—इसके पहिले ही मेरी रानी का परलोकवास हो चुका था, और ब्रह्मचारीजी बद्री-केदार की यात्रा को जा चुके थे—कि एक दिन अपने महल में तड़के जब मैं सोकर उठा तो पलंग पर एक बंद लिफ़ाफ़ा अपने नाम का मैंने पाया। चट उसे खोलकर पढ़ना प्रारम्भ किया। वह खत अभी तक मेरे पास मौजूद है और वह संस्कृत में लिखा हुआ है।"

यह कहकर राजासाहब ने जेब से निकाल कर उस खत को पढ़ा और उसका मतलब सभोंको समझाया। हमारे प्रेमी पाठक लोग भी उस खत के लिये उत्कंठित होंगे, इसलिये हम उस खत को हिन्दी में लिखते हैं,—

"राजा हीराचन्द !

"मैं कौन हूं, और क्यों तुम्हारी इतनी भलाई चाहता हूं, इसका पता लगाने का खयाल जी से एक दम दूर करके जो कुछ

मैं तुम्हें सलाह देता हूं, उसे बिना सोचे-विचारे करना और हर्गिज़ मेरी राय के खिलाफ़ कुछ न करना।

"सुनो! ग्रहचक्र के अनुसार तुम्हारे ऊपर बड़ी भारी आफ़त आनेवाली है, सो भी जल्दी ही; सो तुम किसी शख्स के द्वारा कैद होकर अपने ही अजायबघर में दस-बारह-वर्ष तक कैद किए जाओगे और तुम्हें कैद करनेवाला तुम्हारी सारी सम्पत्ति को दखल करके तुम्हारे पुत्र मानिक को बेदखल कर देगा; पर इतना याद रक्खो कि जो होनी है, वह अवश्य ही होती हैं, और किसी तरह भी बिना हुए नहीं रहती; इसलिये हमारे खत की लिखावट के खिलाफ तुम्हें कुछ भी न करके प्रारब्ध की धारा में अपने तईं छोड़कर ग्रहचक्र के तमाशे को देखना और ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए, नहीं तो तुम्हारे हक़ में बहुत ही बुरा होगा।

"तो अब तुम्हें क्या करना चाहिए, सो सुनो,—तुम्हारे कैद करनेवाले तुम्हें किसी तरह मार नहीं सकते, और न तुम ही उनके मारने का कभी इरादा करना; क्योंकि तुमलोगों की मौत एक स्वतन्त्र रीति से ही होगी; पर बात यह है कि तुम्हारे कैद करने वाले तुम्हें खाने-पीने को कुछ भी न देंगे, इसलिये इसका बंदोबस्त हमने खुद करदिया है। तुम अपने शयनागारवाली लोहे की आलमारी में एक अंगूठी, एक तलवार और एक नेजा पाओगे, पर खबर्दार पहिले अंगूठी पहिरे बिना हर्गिज़ तलवार या नेजे को न छूना; और अंगूठी, तलवार तथा नेजे को आज ही जाकर तुम उस कोठरी में रख देना, जिसमें तलवार-बहादुर पुतला है; क्योंकि न जाने कब कैद होकर तुम वहां पहुंचाए जाओ! फिर वहां कैद होने पर तुम अंगूठी को पहिन लेना और कैद से छुटने के पहिले कभी अंगूठी अपने बदन से दूर न करना। यह तुम्हारी बहुत रक्षा करेगी और बैरियों से तुम्हें किसी तरह का भी खटका न रहेगा। हां यदि तुम्हारे बैरी वहांकी कोई चीज़ हड़पना चाहें तो

तुम उन्हें नेजे, तलवार, या पुतलेवाली कोठरी में रक्खे हुए तीर-कमान से डरवा सकते हो, पर उनके मार डालने का इरादा न करना, क्योंकि उनकी मौत तुम्हारे हाथ नहीं है।

" यह अंगूठी और तलवार, नेजे तथा तीर-कमान आदि में बिजली का असर है और हिलाने पर इनमें से रौशनी पैदा होती है, जिसकी चमक से उन लोगों की, जिनके पास ऐसी अंगूठी न हो, आंखें बन्द होजाती हैं; और यदि इनमें से कोई हथियार किसी शख्स के बदन में ज़रासा छुला दिया जाय तो चट वह बेहोश होजायगा; और इसकी चोट, यानी वार को खाकर फिर कोई भी जी नहीं सकता।

" निदान, इन सब चीज़ों को अपने काबू में कर लेने पर तुम एक कूएं पर एक ताम्बे का चद्दरा ढंका हुआ पाओगे। चौंकना मत; यह चद्दरा मैंने इसलिये ढंक दिया है कि जिसमें तुम्हारे दुश्मनों का गुज़र उधर न हो; कारण यह है कि तुम्हारे बैरियों ने इस अजायबघर की दूसरी ताली बना ली है और वहां जाकर वहांकी कुछ कुछ सैर भी की है। हां, तो तुम बिजली की अंगूठी के रहने से उस तवे को सरका कर उस कूएं के अंदर एक जंजीर के सहारे से उतर, या कूद जाना और पानी की तह पर पहुंचने पर ऊपर की ओर बढ़ते जाना। थोड़ी दूर चलने पर तुम पानी से बाहर एक सुरंग के मुहाने पर पहुंचोगे और फिर एक माईल तक बराबर भीतर ही भीतर चलने और दूसरे मुहाने से बाहर होने पर अपने तईं एक बहुत ही छोटे, मगर खुशनुमा बाग में पाओगे। वह बाग एक खड़ी तथा छोटी चार-पहाड़ियों से घिरा हुआ है, जिसके अंदर से न कोई पहाड़ी लांघ कर बाहर जा सकता, न बाहरवाला भीतर आ सकता है। उसमें मीठे पानी की नहर और मेवे के दरख़्त हैं, और एक बहुत ही सुहावनी संगमर्मर की बारहदरी है, जिसमें आराम करने

के सारे सामान इकट्ठे हैं, इसके अलावे एक शिवालय, और दिल बहलाने के लिये थोड़ी सी पुस्तकें आदि भी मौजूद हैं। बस इसीको अपनी जिन्दगी का सहारा समझ कर संतोष से अपने गर्दिश के दिनों को धीरज से गंवा देना और किसी तरह के सोच-फिक्र से आत्महत्या न कर डालना। बस उस अजायबघर के इसी कूए वाले भेद से तुम नावाकिफ थे, जिसे मैंने आज तुम पर जाहिर किया।

"मेरे पता लगाने के लिये तुम हैरान मत होना, और ईश्वर पर भरोसा रखकर जो कुछ तमाशा भाग्य दिखलावे, उसे देखने के लिये बराबर मुस्तैद रहना। हां, यह निश्चय जानो कि एक दिन ऐसा भी आवेगा कि तुम ग्रहचक्र के बखेड़े से छूटोगे, और तब शायद मुझसे भी भेंट होजायगी।

तुम्हारा सच्चा हितू,

एक मनुष्य।"

इस विचित्र खत को पूरा करके राजासाहब ने कहा,—

"इस खत के पाने और पढ़ने पर मेरी अजीब हालत होगई, पर बहुत देर तक इस पर गौर करने के बाद मैंने अपने जी में यही निश्चय किया, कि 'खैर, चाहे कुछ भी हो, पर इस पत्र के अनुसार अपने तईं भाग्य ही पर छोड़ देना चाहिए!' फिर मैंने अंगूठी वगैरह भी ठीक जगह पर पाई और जाकर उन सभों को ठिकाने से रख दिया।

"मेरे पुरखा सदा से धनवान होते आए और यहांके जिमींदार रहे। फिर दिल्ली के बादशाह की कृपा से मेरे परदादे को पुश्तैनी राजा की उपाधि मिली और ऐसा लोग कहते हैं कि उन्होंने ही एक बड़े भारी ज्योतिषी महात्मा की राय से यहां की इमारतें और इस अजायबघर को बनवाया था। तबसे यह दस्तूर था कि जो गद्दी पर रहता, वह अपने उत्तराधिकारी

के सब तरह से लायक और होशियार होने पर उससे इस बात की कसम ले लेने पर कि, 'सिवा उत्तराधिकारी के और किसी पर इस अजायबघर का भेद न जाहिर किया जाय,' इसका भेद बतला देता था; किन्तु मेरे पिता ने न जाने किस कारण से उस कुएं वाले भेद को मुझे नहीं बतलाया था; किन्तु उस महात्मा की चिट्ठी पाकर जब मैंने कुएं की राह से उस विचित्र बाग को देखा, तब मैंने उसकी चिट्ठी की लिखावट पर ही चलना निश्चय किया।

"यहां पर एक बात और सुन लीजिए;—शायद मेरी नालायकी का कोई लक्षण मेरे पिता ने जान लिया हो और इसी बजह से मुझ पर कुएं वाले भेद को न जाहिर किया हो! खैर, मेरी नालायकी का हाल भी सुनिए। यद्यपि मुझसे इस बात की कसम ले ली गई थी कि, 'सिवा उत्तराधिकारी के और किसी पर भी इस अजायबघर का हाल न जाहिर किया जाय;' पर मैंने उस पर कुछ खयाल न करके बाग की बारहदरी का भेद ब्रह्मचारी रामानन्द को बतलाया था और अपनी रानी को कई बार इस अजायबघर की सैर कराई थी।

"निदान, फिर तो जिस तरह मैं फंसा और मुद्दत तक कैद रहा, इसका हाल खुद रामलोचन ही ठीक ठीक लिख गया है।"

इसके बाद उन्होंने अपने छूटने का हाल कह कर रामलोचन की आत्महत्या पर खेद प्रगट किया और उसकी आत्मा पर दया करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करके कहा,—

"किन्तु उन महात्मा ने अपने दर्शन देने की जो बात कही थी, सो कब पूरी होगी?"

"अभी, अभी," यह आवाज एक ओर से आई और साथ ही भीड़ चीर कर एक जटाजूटधारी तेजस्वी तपस्वी राजासाहब के

सामने आता हुआ दिखाई पड़ा। उसके तेज से सब झुक से गए, सभोंने दब दब कर राह दी और लाटसाहब वगैरह ने उठकर उसकी अगवानी की। राजा हीराचन्द ने अपने तईं उसके पैरों में डाल दिया तथा रामानन्द ने भी दण्डवत् प्रणाम किया।

उस तपस्वी ने स्नेह से सबकी ओर देखा, लाटसाहब-वगैरह अंगरेजों से हाथ मिलाया, रामानन्द को दंडवत् का जवाब दिया और राजा हीराचन्द को उठाकर गले से लगाया। सारी भीड़ "जय, योगिराज बाबा की जय" कहकर शोर गुल करने लगी और योगी बाबा लाटसाहब के बगल में बैठे। थोड़ी देर में हल्ला गुल्ला बंद होने पर योगिराज ने खड़े होकर इसप्रकार कहा,—

"मेरी अवस्था इस समय लगभग ढाई-तीन-सौ वर्ष के होगी, पर योगाभ्यास के कारण मैं सत्तर-अस्सी वर्ष से अधिक नहीं जान पड़ता और अब मुझमें यह शक्ति होगई है कि चाहे जितने दिनों तक जीया करूं या जब चाहूं, तब अपना कलेवर छोड़ दूं।

"आज से दो सौ वर्ष पहले मैं ज्योतिषी का काम करता था, और शिल्पविद्या पर मेरी बड़ी रुचि थी। संयोग से काशी में तुम्हारे परदादे से, जो कि उस समय युवा थे, मेरी भेंट हुई और मैं उनकी मिलनसारी और गुणग्राहकता से जकड़कर यहां उनके साथ आया और उन्होंने मेरी सलाह से यह अजायबघर आदि सारी इमारतें, जिनमें से बाहर का राजप्रासाद तोड़ फोड़ डाला गया है, बनवाईं। उनकी रुचि योगाभ्यास पर विशेष थी, मैं भी योग का कुछ अभ्यास रखता था, अतएव मेरी उनकी खूब बनी और बहुत दिनों तक उसी कुएं वाले बाग में हमदोनों योग का अभ्यास करते रहे। फिर बहुत काल पीछे, जब वे साठ वर्ष के हुए तो अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना, मेरे साथ उत्तराखण्ड की ओर चलेगए। हज़ार हो तौ भी वे सुखिया लोग थे; सो वहां की शीत की प्रबलता से अधिक दिनों तक वे जीवित न

रह सके और मैं बराबर वहां रहता तुम्हारे यहांका हाल ज्योतिष और योगबल से बराबर जाना करता था।

"तुम्हारे पिता के मरने के कुछ दिन पहिले मेरे विचार में कुछ गड़बड़ जान पड़ा, तब मैं वहांसे यहां आया, और अकेले में तुम्हारे पिता को अपना परिचय देकर उनके द्वारा कुएं वाला भेद छिपा कर और सारा भेद तुम पर प्रगट कराया। फिर तुम्हारे खोटे ग्रहचक्र को देख मैंने ही गिरिजा को समझा-बुझाकर मालती के लड़के मानिकको रानी की पलङ्ग पर डलवा दिया। फिर सुकुमारी को जमना के गले मढ़ना भी मेरी ही सम्मति का फल है और वह मानिक का यंत्र भी मेरा ही बनाया हुआ है।

"फिर जब तुम्हारे खोटे दिन बहुत समीप आगए और रामानन्द तीर्थयात्रा को चले गए तो मैंने कुएं वाले बाग से अंगूठी, तलवार, नेजा आदि लाकर और कुएं पर बिजलीवाला खटरा ढंपकर उन सब चीज़ों के साथ तुम्हें पत्र लिख और योगबल से तुम्हारे महल में जाकर इन सभों को ठिकाने से रख दिया, जिसका खुलोखा हाल तुम अभी कह चुके हो। फिर मैं तुम्हारे कैद होने पर बराबर छाया की भांति तुम्हारी रखवाली करता और कई बार इस अजायब घर के अन्दर जाकर चुपचाप तुम्हें देख भी आया हूं। यद्यपि तुमको किसी बात का कष्ट न था, और न मेरे रहते तुम्हें होता ही, पर पराधीनता, या कैद के सोच से तुम दिन पर दिन सूखकर बहुत ही काहिल हुए जाते थे!

"जगदीश्वर की कृपा से अब तुम ग्रहों के फेर से छूट आए और पापियों ने भी अपनी अपनी करनी का फल भोगा, इसलिये उचित है कि अब तुम संसार के झमेले में न फसकर नारायण के भजन की ओर अपना चित्त लगाओगे।"

इतना कहकर योगी बाबा उठे और उनके उठते ही सारा दर्बार उठ खड़ा हुआ। राजा हीराचन्द ने उनके पैरों पर गिरकर उन्हें बहुत रोका,

पर वे उनके कान में केवल इतना कहकर, 'कि परसों आधीरात के समय हम मिलेंगे,' चले गए। उनके जाने पर इस बिचित्र रहस्यजाल की उलझन में लोगों का चित्त इतना उलझा कि सबके सब उस अजायबघर के देखने के लिये तड़पने लगे, पर सभों के भाग्य में वह सुख नहीं बदा था; क्यों कि सब कोई अजायबघर नहीं देख सकते थे।

दर्बार उसी समय बर्खास्त कर दिया गया और लाटसाहब वगैरह अंग्रेज़ों को तथा रामानन्द, सुकुमारी और मानिकचन्द को साथ लेजाकर राजा हीराचन्द ने अजायबघर की खूब सैर कराई; पर एक बात बड़े ताज्जुब की यह थी कि वह पुतलेवाली कोठरी और ताम्बे के चद्दरेवाले कुएं का उस अजायबघर में कहीं नाम निशान भी न था, और जितनी संदूकें जवाहिरात या अशर्फियों से भरी हुई थीं; वे सब भी गायब थीं, तथा बिजली की अंगूठी और तलवार वगैरह भी नदारत थीं ! हां, उन कोठरी आदि की जगह मैदान अवश्य था; पर यह नहीं जान पड़ता था कि कुएं के साथ चारपहाड़ी वाला बाग क्या हुआ! यह हाल देखकर सबके सब बड़े अचरज में पड़े, पर सभोंने यही निश्चय किया कि, 'यह खेल भी योगी बाबा का ही है, और उन्होंने यह खेलवाड़ भी कुछ समझ कर ही किया होगा!

निदान, लाटसाहब राजासाहब से बिदा होकर कलकत्ते रवाना होगए, और सब लोग भी, जो इस दर्बार में बुलाए गए थे, या आपसे आए थे, अपने-अपने घर की ओर गए। लोगोंने योगी बाबा को बहुत ढूंढ़ा, पर यदि महात्मा लोग अपना दर्शन देना न चाहें, तो उन्हें बरजोरी कौन पा सकता है! कहा है कि,—

"ठग मारे मारे फिरत, जित तित भेख बनाय।
साँचे साधू मिलत नहिं, अपनो रूप छिपाय॥"

चौंतीसवां परिच्छेद.

"होत सोई, जो राम करावै ।"

"दैवं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम् ।
समुद्रमथनाल्लेभे, हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥"

(चाणक्यस्य.)

तीसरे दिन प्रतिज्ञा के अनुसार आधीरात के समय योगी बाबा राजा हीराचन्द से मिले । राजासाहब भी तयार थे, बस चट योगी बाबा के साथ वे चल खड़े हुए । फिर उनका या योगी बाबा का पता संसार में किसीने न पाया; पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि वे दोनो ही कुछ दिन पीछे योगाभ्यास द्वारा मोक्षपदवी को पहुंच गए थे ।

राजासाहब के गायब होने के दूसरे ही दिन सेठ अमीचन्द ने उनके कमरे में अपने नाम का एक पत्र पाया; वह पत्र यही है,—

"प्यारे अमीचन्द !

"अब संसार के जञ्जालों में फंसे रहना व्यर्थ समझकर मैं महात्मा योगिराज के साथ हिमालय की ओर जाता हूं । बस हमारी-तुम्हारी यही अन्तिम भेंट है । मानिक तथा सुकुमारी को हमारी ओर से आशीर्वाद देकर तुम ढाढ़स देना ।

"मेरी प्यारी रानी ने जिसे अपना प्यारा पुत्र माना था, और मैंने एक दिन जिसके नाम अपनी सारी सम्पत्ति लिखदी थी, आज भी प्रसन्नता से मैं उसी योग्य बालक मानिकचन्द को ही अपना पुत्र मान और चित्त से उत्तराधिकारी समझ, उसीको अपनी सारी सम्पति दान किए जाता हूं और आशा रखता हूं कि जबतक मानिक अपनी सम्पत्ति के प्रबंध करने में समर्थ न

होगा, तब तक तुम्हीं मेरी ओर से सारी ज़िमींदारी की देखभाल करते रहना और किसी तरह का गड़बड़ न होने देना।

"मेरी प्यारी पुत्री सुकुमारी का विवाह, जहांतक जल्द होसके, मानिक के साथ कर देना और जिसमें दोनों स्त्री-पुरुष परस्पर प्रेमपाश में बंधे रहें, ऐसा ही उपदेश तुम बराबर उन दोनों को दिया करना।

"मेरी खोज लगाने के लिये कोशिश न करना और लाटसाहब वगैरह मेहर्बानों से भी मेरी ओर से बहुत-बहुत सलाम कहना।

"ब्रह्मचारीजी को तुम मानिक का प्रधान दीवान बनाना और मानिक तथा सुकुमारी को भली भांति समझा देना कि वे दोनो ब्रह्मचारीजी को मेरी ही भांति समझें और उनकी आज्ञा में बराबर चलें।

"हां, योगी बाबा से भेंट होने पर उन्होंने उस अजायबघर के बारे में यह बात कही है कि, 'हां, मैंने ही उसमें उलटफेर किया है और जो जो चीजें वहांसे गायब करदी गई हैं, यह भी मेरा ही काम है। इसका कारण यह है कि ज्योतिष की गणना के अनुसार अब मानिक या सुकुमारी, या इनके बंशवाले उस सम्पत्ति के, जो कि अजायबघर से गायब कर दी गई हैं उत्तराधिकारी नहीं हो सकते; तो फिर वे सब चीजें, या कुंवा तथा चारपहाड़ी वाला बाग क्या हुआ? इसका उत्तर यही है कि वहांकी सारी बस्तुएं ही किसी अद्भुत शक्ति द्वारा वहां हीं जमीन के अंदर कर दी गई हैं। मगर सावधान! उनके पाने के लिए हर्गिज़ कोशिश न करना, नहीं तो सत्यानाश होजायगा।' इसलिये मानिक तथा सुकुमारी को समझा देना कि उन सब गुप्त चीजों के पाने के लिये कभी भूल कर भी वे लोग कुछ उद्योग न करें। बस, अब तो कोई बात कहने लायक नहीं सूझती।

तुम्हारा प्यारा मित्र,—　　हीराचन्द"

पैंतीसवां परिच्छेद.
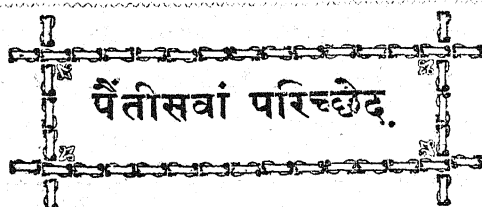
" सखीरी तोपै बलि बलि जैये ! "

"मुग्धे मानं न ते कर्त्तुं, युक्तं प्राणाधिके प्रिये ।
धत्से मत्सी कियत्कालं, जीवितं जीवनं विना ॥"

(सोमदेवस्य.)

इस पत्र के पढ़ने से अमीचन्द, ब्रह्मचारी, मानिक, सुकुमारी, तथा उन लोगों को, जिन लोगों ने इस पत्र को सुना, बड़ा खेद हुआ; पर क्या किया जाय! यह संसार विचित्र इन्द्रजाल से भरा हुआ है, इसलिये यहां किसी का चारा नहीं चलता!

यद्यपि सुकुमारी ने पिता को पाकर भी कुछ दिन उनकी सेवा अपने हाथों न की, इस बात को जब वह सोचती, तो बहुत ही उदास होती और रोती; पर मोहनदेई के कारण वह बहुत देर तक उदास रहने या रोने न पाती। मानिक भी बहुत उदास होता, पर उसको शान्त और प्रसन्न रखने का भार मोहनदेई और दौलतचन्द, दोनों ही ने ले रक्खा था।

योंहीं होते होते कुछ दिनों में जब दोनों के चित्त कुछ शान्त हुए, तब एक दिन मोहनदेई ने सुकुमारी से पूछा,—"बीबी! जो कुछ होना था, सो सब तो हो ही चुका, और संसार ने जो जो तमाशे दिखाए, वे सब भी देखे, पर यह तो कहो कि तुम दोनो एक दूसरे का हाथ भी पकड़ोगी, या योंहीं नाहक एक जगह रहकर भी एक दूसरे के वियोग की आग तापा करोगी?"

इस पर सुकुमारी ने कहा,—" बीबी ! यह बात तो बाबा जानें; जो वे चाहें सो करें, पर मेरा चित्त अभी तक ऐसा दुखी है कि कुछ अच्छा नहीं लगता । "

इस पर मोहनदेई ने मुस्कुराकर कहा,—" ठीक है, जब सब सुख के सामान नारायण देता है, तब उस पर रुचि नहीं होती, और जब उसके लाले रहते हैं, तब चित्त भी तरह तरह के हौसले ही में अपने तईं भुलाता रहता है । "

इस पर सुकुमारी ने मुस्कुराकर सिर झुका लिया । तब मोहनदेई ने उसी जगह मानिकचन्द को बुलाया । उसके आते ही सुकुमारी लजाकर घूंघट काढ़ बैठी और मोहनदेई ने मानिक से कहा,—

" सुनो साहब ! राजकुमारीजी कहती हैं कि, 'अब यदि दौलत पाकर मुझ गरीबनी पर आपकी रुचि न रही हो, तो वैसा साफ साफ कहिए; तो फिर मैं यहां क्यों व्यर्थ रहकर आपके गले पड़ूं ? बरन यहांसे कूच करूं और किसी गरीब ही को ढूंढूं ! "

इतना सुनते सुनते आखिर न रहा गया और सुकुमारी जोर से रो उठी ! इधर मानिक की आंखों से भी आंसुओं की धारा बह निकली ! हाय ! बेचारी मोहनदेई यह नहीं जानती थी कि 'मेरी इस नासमझी की दिल्लगी का यह नतीजा होगा !' इसलिये अपनी बेवकूफी पर वह बहुत ही लज्जित हुई और यह कहती हुई वहांसे उठकर चली गई कि, 'नहीं भई, बेचारी सुकुमारी बीबी ने कुछ भी नहीं कहा है । मैं नारायण की कसम खाकर कहती हूं कि इस समय जो कुछ तुमसे मैंने कहा है, वे सारी बातें मेरे ही मन की गढ़ी हुई हैं ।'

मोहनदेई के जाते ही सुकुमारी झपटकर मानिक के पैरों पर इसलिये गिरना चाहती थी, कि, 'ये सब बातें मैंने सपने में भी नहीं

कही हैं,' पर उसका यह मतलब समझकर मानिक ने उसे बीच ही में रोककर गले लगा लिया और उसके गालों को चूम, आंसू पोछ और प्यार से ठुड्ढी पकड़ कर कहा,—"प्यारी! उदास मत हावो, सुनो,—यदि ये बातें तुमने न भी कही हों, तो भी तुम हजार बार ऐसा कह सकती हो; क्योंकि न्याय से तो तुम्हीं इस सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी हो और मैं तो ज़बर्दस्ती मालिक बन बैठा, या बरजोरी बनाया गया हूं; परन्तु प्यारी! सोचो तो सही, जब कि बाबूजी अपने पत्र में सेठजी और ब्रह्मचारीजी की आज्ञा में चलने के लिये लिख गए हैं, तो मैं फिर इनलोगों की मर्जी के खिलाफ़ कोई बात कैसे कर बैठूं? इसलिये जरा सब्र करो, घबराओ मत; दिन की देरी चाहे कितनी ही हो, पर सिवाय तुम्हारे, प्यारी! मेरे गले का हार दूसरी कौन होसकती है?"

सुकुमारी ने मानिक का गाल चूमकर कहा,—"प्यारे! मैं तो ब्याह के लिये रत्तीभर भी जलदी नहीं करती, पर न जाने आज मोहनदेई को क्या सूझी कि ऐसी बेढब दिल्लगी वह कर बैठीं!"

मानिक ने कहा,—"उसका बड़ा अच्छा स्वभाव है, वह बड़ी ही हँसौड़ है और तुमको जी से प्यार करती है; तभी तो वह तुमसे इतनी छेड़छाड़ करती है।"

सुकुमारी,—"हां, यह तो मैं भी जानती हूं कि वह बड़ी हंसमुख है और मुझे जी से चाहती है। अच्छा, यह तो बताओ कि अब यहीं रहोगे, या कलकत्ते फिर चलोगे?"

मानिक,—"यह बात मैं ब्रह्मचारीजी से पूछूंगा, तब इसका जवाब दूंगा।"

फिर तो इन दोनों में देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। जब मानिक चला गया, तब मोहनदेई आई और उसने सुकुमारी को गले लगाकर बड़े प्यार से कहा,—"क्यों, बीबी! तुम मेरे हंसी-ठट्ठे से नाराज होती हो!"

सुकुमारी ने भी मोहनदेई का गाल चूम लिया और हँसकर कहा,—"बस, अब आज से मैं तुम्हारी ठठोलवाजी से कभी न चिढ़ूंगी; चाहे तुम कितनी ही ठठोली क्यों न करो, पर अब मैं उसका जरा भी खयाल न करूंगी।"

मोहनदेई,—(मुस्कुराकर) "क्या, इस बात का तुम वादा करती हो कि, अब मेरी दिल्लगी पर तुम जरा न चिढ़ोगी?"

सुकुमारी,—"हां, हां, बेशक वादा करती हूं।"

मोहनदेई,—"खैर अच्छी बात है; यही तो देखना है कि अब तुम मेरी ठठोली कहां तक सह सकती हो!"

सुकुमारी,—"देख लेना; मैंने अब तुम्हें अच्छी तरह पहचान लिया है, इसलिये अबसे मैं तुम्हारी बातों पर कभी न चिढूंगी।"

मोहनदेई,—"और मैं भी अब अपने को 'मोहनदेई' तभी समझूंगी, जब तुम्हें चिढ़ा छोड़ूंगी।"

सुकुमारी,—"अजी, रानी! अब वे दिन दूर गए; अब तुम्हारी कोई कला मेरे आगे न लगेगी।"

मोहनदेई,—"अच्छा, अच्छा, देखा जायगा।"

सुकुमारी,—"क्या देखा जायगा?"

मोहनदेई,—"वही, जो मैं दिखाऊंगी।"

सुकुमारी,—"खैर, उसे मैं शौक से देखूंगी!"

मोहनदेई इतना सुनकर जोर से हंस पड़ी और सुकुमारी के गाल में दो गुलचे लगाकर बोली,—"देखती हूं कि अब तुम बहुत शोख होगई हो!"

सुकुमारी,—"यह तो तुम्हारी ही कृपा का फल है!"

योंहीं देरतक इन दोनों में मीठी-मीठी बातें होती रहीं, जिनके लिखने की यहां पर कोई आवश्यकता नहीं है।

हां, एक दिन की दिल्लगी यहां पर जरूर लिखी जायगी, जिस दिन कि मोहनदेई सुकुमारी को छकाने जाकर खुद-ब-खुद छक

गई थी,—

एक दिन की बात है कि रात के वक्त सुकुमारी और मोहनदेई शतरञ्ज खेलती रहीं, और देर तक खेल होता रहा। फिर जब खेल होचुका, तब सुकुमारी कुछ देर तक गाती-बजाती रही। इसके बाद जब वह पलंग पर जाकर सोगई, तब मोहनदेई ने हरे, पीले, काले, नीले, लाल इत्यादि रङ्गों से उसके चेहरे को खूब रँगा और जब उसने अपने मन के माफिक रँगामेजी कर ली, तब खुद भी सोरही।

मोहनदेई के सो जाने पर सुकुमारी उठी; क्योंकि वह वास्तव में सोई न थी, जागती थी; पर उसने मोहनदेई को अपनी मन· मानी कार्रवाई करने से रोका नहीं! ख़ैर, उसने उठकर और भली भांति अपना मुखड़ा धो कर रंग साफ कर डाला, और आईना देखने पर जब चेहरा साफ़ दीख पड़ा, तब वह मोहनदेई से उसकी शरारत का बदला लेने पर उतारू हुई। अर्थात उस (सुकुमारी) ने फुलेल लगाकर उन्हीं रंगों से मोहनदेई का मुखड़ा रंगना शुरू किया। आधे घण्टे के अन्दर अन्दर जब मोहनदेई का चेहरा बखूबी रंग गया, तब वह जाकर अपनी जगह पर सो रही।

सुबह के वक्त जब मोहनदेई सोकर उठी, तब वह जल्दी जल्दी जाकर मानिक और दौलतचन्द को जगाकर सुकुमारी के पलंग के पास ले आई। उसने अपने मन में यही सोचा था कि, 'इस प्रकार सुकुमारी का मुखड़ा दोनों को दिखलाकर उस (सुकुमारी) को शर्मिन्दा करेगी,' पर ज्योंहीं वह मानिक और दौलतचन्द को लेकर सुकुमारी के पलंग के पास पहुंची, त्योंहीं सुकुमारी ने पलंग से उठ, घूंघट काढ़ और हंसकर मोहनदेई से कहा,—

"वाह, जिठानीजी! आज तो तुमने खूब अपना सिंगार किया है!"

इतना कहकर एक बड़ा सा आईना सुकुमारी ने मोहनदेई के आगे धर दिया और उसमें अपने चेहरे की रंगत देखते ही मोहनदेई तेजी के साथ वहांसे भागी।

उसके जाने पर दौलतचन्द भी वहांसे खिसक कर उसके पास पहुंचा और मानिक ने सुकुमारी से पूछा,—

"यह माजरा क्या है? भाभी के चेहरे को किसने रंगा है?"

इस पर सुकुमारी ने मोहनदेई की सारी कारस्तानी का हाल उससे कह सुनाया, जिसे सुनकर हंसता हुआ वह वहांसे चला गया।

उधर जब दौलतचन्द ने मोहनदेई से उस रंगामेजी के बारे में पूछा, तब वह बहुत ही शर्माई और उसने अपनी शरारत का सारा हाल दौलतचन्द को सुना दिया। इस माजरे को सुनकर दौलतचन्द खूब हंसा और वहांसे चला गया।

इसके बाद सुकुमारी मोहनदेई के कमरे में पहुंची और हंसकर बोली,—"क्यों, जिठानीजी! मिजाज तो अच्छा है!"

यह सुन और हंसकर मोहनदेई ने सुकुमारी को अपने कलेजे से लगाकर उसका मुंह चूम लिया और कहा,—"मेरी प्यारी, देवरानीजी! आज मैंने तुमसे हार मानी!"

सुकुमारी,—"इसलिये अब कभी जादे शेखी न बघारना, क्योंकि कहा है कि, 'सौ सुनार की, तो एक लुहार की'।"

मोहनदेई,—"अच्छा, भई! मैं हारी और तुम जीतीं; क्यों, अब तो तुम प्रसन्न हुईं!"

सुकुमारी ने इतना सुन और मोहनदेई के गले लग कर उसका मुंह चूमना प्रारम्भ किया!
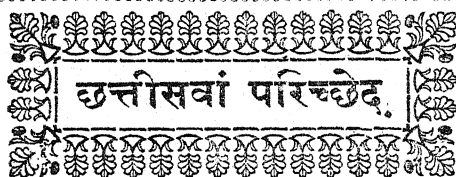
" सदा मीठो फल ही मन भावै ! "

"असम्मुखालोकनमाभिमुख्यं,
निषेध एवानुमतिप्रकारः ।
प्रत्युत्तरं मुद्रणमेव वाचो,
नवाङ्गनानां नव एव पन्था ॥ "

(कलाधरस्य)

निदान, फिर तो बहुत जल्द सुकुमारी के साथ मानिक की शादी होगई और फिर दोनों ने मिलकर "बालेपन की लागी लगन" की गांठ को बड़े ही हौंसले से खोला और उस गांठ के खोलने में जीत सुकुमारी ही की रही !

पीछे कुछ दिन मुंगेर में रहकर सेठ अमीचन्द उन सभों को मुंगेर से कलकत्ते ले गए। इधर मुंगेर में टूटे फूटे राजप्रासाद को जड़ से खोदकर फिर से नई इमारत बनने लगी । कुछ दिनो में जब उत्तम इमारत बन गई तो मानिक और सुकुमारी आकर चैन से उसमें रहने लगे । सुकुमारी मोहनदेई को इतना प्यार करने लगी थी कि साल में दो चार महीने वह दौलतचन्द और मोहनदेई को अपने यहां रखती और महीने दो महीने के लिये मानिकचन्द के साथ जाकर मोहनदेई की मेहमान बनती थी । थोड़े दिनों में मोहनदेई और सुकुमारी की गोदी भरी-पूरी होगई और जगदीश्वर ने उन सभों के दिन बड़े आनन्द से व्यतीत कराए ।
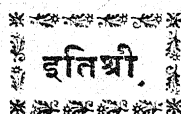
श्रीः

उपन्यास

मासिक पुस्तक।

वार्षिक मूल्य दो रुपए—नमूने की प्रति चार आने में।

"उपन्यास"—मासिक पुस्तक क्या है? रँगीले, सजीले, भड़कीले, चटकीले, अनूठे, अनोखे, जानदार और शानदार बेजोड़ उपन्यासों की यह बहुत पुरानी और बड़ी बढ़िया मासिकपुस्तक है, जो लगभग सोलह बरसों से निकल रही है। इस मासिक पुस्तक में हर महीने चुहचुहाते और फड़कते हुए चित्रविचित्रघटनाओं से भरे हुए नए नए उपन्यास छपा करते हैं, जिनका हरएक पेज दिलचस्पी, तबीयतदारी, रोचकता और मनोहरता से लबालब भरा रहता है। यदि आपको सचमुच रोचक, मनोहर, सुन्दर, चित्ताकर्षक, शिक्षाप्रद और रसीले उपन्यासों का आनन्द लेना हो,—और साथ ही सामाजिक, धार्मिक ऐतिहासिक, जासूसी, तिलस्मी और ऐयारी के ढंग के अनूठे उपन्यासों की बहार देखनी हो तो आप तुरत अवश्य इस "उपन्यास" मासिक पुस्तक के ग्राहक होजायं। इस मासिकपुस्तक में एक से एक बढ़कर रोचक और मनोहर उपन्यास निकल चुके हैं। श्रीयुत पण्डित श्रीकिशोरीलाल गोस्वामीजी के रचे हुए प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध उपन्यास इसी "उपन्यास-मासिकपुस्तक" द्वारा ही क्रमशः छपकर प्रकाशित हुए हैं। माधवीमाधव, चपला, पन्नाबाई, तारा, रज़ीयाबेगम,

लीलावती, मल्लिकादेवी कुसुमकुमारी, राजकुमारी, तरुणतपस्विनी, हृदयहारिणी लवङ्गलता, आदि अनूठे और दिलचस्प उपन्यास इसी "उपन्यास" मासिकपुस्तक द्वारा धीरे धीरे छपकर प्रकाशित हुए हैं। "लखनऊ की कब्र" नाम के मशहूर और अनूठे उपन्यास के चार हिस्से भी इसी "उपन्यास-मासिक पुस्तक" द्वारा ही छपकर उपन्यास के प्रेमी पाठकों के गले के हार होरहे हैं। 'लखनऊ की कब्र" का पांचवां हिस्सा भी इसी "उपन्यास" मासिक द्वारा अभी हाल ही में छपकर प्रकाशित होचुका है। "लखनऊ की कब्र" के अभी और भी कई हिस्से इसी "उपन्यास" नाम की मासिकपुस्तक द्वारा बराबर छपते रहेंगे। इसी मासिक पुस्तक में कभी कभी उत्तमोत्तम छोटी छोटी आख्यायिकाएं भी छपा करती हैं। अस्तु, उपन्यास के प्रेमी पाठकों से हमारा यह अनुरोध है कि वे लोग यदि श्रीगोस्वामीजी के रचे हुए कोई उपन्यास पढ़ चुके हों तो उन्हें चाहिए कि वे कृपाकर एक बार इस "मासिकपुस्तक" को अवश्य ही देखें। यदि श्री गोस्वामीजी के रचे हुए कोई उपन्यास आपलोग पढ़ चुके हों, तब तो "उपन्यास" मासिक पुस्तक के नमूने की कोई आवश्यकता आपलोगों को हुई नहीं; क्योंकि वैसी अवस्था में आप खुद इस बात को समझ लेंगे कि यह "मासिक पुस्तक" कैसी है। किन्तु यदि आप नमूना ही देखना चाहें तो कृपाकर चार आने भेजकर "उपन्यास" मासिक पुस्तक की एक संख्या मंगाकर देख लीजिए। यदि नमूना पसन्द हो तो फिर बाकी के १।।।) भेजकर सालभर के लिए "उपन्यास" मासिक पुस्तक के ग्राहक होजाइएगा।

☞ मंगाने का पता,—

मैनेजर,—श्रीसुदर्शन प्रेस,

श्रीवृन्दावन (मथुरा)

हृदयहारिणी, वा आदर्शरमणी, उपन्यास

मू० ॥) डा० म० -)

इस अद्वितीय उपन्यास में राजकुमारी कुसुमकुमारी के अपूर्व प्रेम, पातिव्रत्य, सुशीलता, धीरता, निर्लोभिता आदि स्वर्गीय गुणों का अद्भुत चित्र खैंचा गया है। उपन्यास बहुतही मनोहर और शिक्षाप्रद है। विशेषकर यह स्त्रियों के पढ़ने योग्य है।

हृदयहारिणी, वा आदर्शरमणी पर सम्मति,—

हिन्दीप्रदीप, जिल्द २६, सन् १९०५ ई०—

आदर्शरमणी।

काशी में इन दिनों उपन्यास की बाज़ार खूब ही गरम है। ज़रासा होश सम्हला, गूंगां करने आगया कि उपन्यास-लेखक बन बैठते हैं। बंगला, मराठी, गुजराती से तर्जुमा कर पांचवें सवार में दाखिल हो जाते हैं। दूसरी बात उनको यह समाई हुई है कि ऐयारी या तिलिस्म उसमें न हो तो वह किसी काम ही का न रहा; किन्तु इस आदर्शरमणी का ढंग उन सभों से निराला है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस समय इसकी बड़ी ज़रूरत है कि पढ़नेवाले ऐतिहासिक घटनाओं से भी जानकार होते रहें। उपन्यास पढ़नेवाले बहुधा साधारण योग्यता के लोग होते हैं, इतिहास या पुरावृत्त के सम्बन्ध में जो कुछ उन्हें मालूम होगया, वह मानो विना प्रयास हाथ लगा। दसवें परिच्छेद में गोस्वामी श्रीकिशोरीलालजी ने नायक-नायिका के नखसिख का वर्णन जिस क्रम से उठाया है, वह गोस्वामीजी की प्रौढ़ लेखनी का बड़ा उत्तम नमूना है। मूल्य ॥)

—:○:—

मिलने का पता,—श्रीसुदर्शनप्रेस वृन्दावन।

लवङ्गलता वा आदर्शबाला उपन्यास।

मू० ।|) डा० म० -)

यदि पढ़ने पर पाठकों को "हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी" उपन्यास पसंद आवे तो वे स्वयं इस बात का अनुभव कर सकेंगे कि फिर हृदयहारिणी का उपसंहारभाग "लवङ्गलता" उपन्यास कितना मनोहर और दिलचस्प होगा। यह भी स्त्रियों के पढ़ने योग्य है।

इसमें महाराज नरेन्द्रसिंह की बहिन लवङ्गलता का दुराचारी सिराजुद्दौला के चकाबू में फंसकर बड़ी खूबी के साथ अपना धर्म बचाकर निकल आने का वृत्तान्त बड़ी ही उत्तमता से लिखा गया है।

लवङ्गलता पर आरानिवासी पंडित जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी की सम्मति,—

"प्रिय गोस्वामीजी,

"हृदयहारिणी उपन्यास" पढ़ लेने पर मैं उसके उपसंहार भाग "लवंगलता" के पढ़ने का अत्यन्त अनुरागी था। अस्तु आज वह भी प्राप्त हुई और आद्यन्त पढ़ डाली गई। "हृदयहारिणी" के विषय में परमादरणीय हिन्दीप्रदीप ने अपनी अप्रेल सन् १९०५ ई० की संख्या में जो कुछ कहा है, उसके प्रत्यक्षर से मैं सहमत हूं और साथही यह भी कहता हूं कि "लवङ्गलता के प्रणयन करने में भी आप हृदयहारिणी' के समान ही कृती हुए हैं।" इसमें आपने मुर्शिदाबाद के नव्वाब सिराजुद्दौला को अपने एक मुसाहब को तस्वीरवाली के भेष में भेजकर रङ्गपुर के महाराज नरेन्द्रसिंह की बहिन कुमारी लवङ्गलता को उड़ा लेजाना; फिर सिराजुद्दौला की बहिन नगीना बेगम की सहायता से लवङ्गलता का अपना धर्म्म बचाकर वहांसे निकल आना इत्यादि बातें बड़े अच्छे ढंग से लिखी गई हैं। हृदयहारिणी के समान लवङ्गलता का नखसिख भी आपने हिन्दीसाहित्य में एक नवीन ढंग का लिखा है। जिन्होंने "हृदयहारिणी" पढ़ी है, वे इस उपन्यास को एकबार अवश्य पढ़ेंगे, इसमें संदेह नहीं।

जजेस कोर्ट, आरा।	भवदीय
११—२—०५	जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी।

मिलने का पता,—श्रीसुदर्शनप्रेस, वृन्दावन।

माधवीमाधव
वा
मदनमोहिनी
सामाजिक उपन्यास।

यह उपन्यास हिन्दी के उपन्यासों का सम्राट् है। इसमें सामाजिक चित्र इस सुन्दरता से चित्रित किया गया है कि पढ़नेवाले गद्गद हो उठते हैं। इस उपन्यास की लोगों ने बड़ी ही प्रशंसा की है। यहां तक कि कुछ लोगों ने इसकी इकट्ठी कापियां मंगाकर अपने मित्रों को बांटी हैं और कई उपन्यास-प्रेमियों ने इसकी सैकड़ों प्रतियां बिकवा दी हैं। कुछ सज्जनों का तो यह आग्रह है कि इसके ऐसा एक उपन्यास और लिखा जाय। जिसने इसे पढ़ा, उसने फिर और किसी उपन्यास को कभी पसन्द ही नहीं किया। यदि आपको उपन्यासों के पढ़ने का शौक है, तो आप माधवीमाधव पढ़िए और अगर आपको उपन्यासों के पढ़ने का शौक नहीं है तो भी आप माधवीमाधव उपन्यास पढ़िए। इसे आप अवश्य पसन्द करेंगे। साढ़ेचार सौ पृष्ठ के बड़े पोथे का मूल्य केवल दो रुपए और डाकखर्च तीन आने।

कुमारीचन्द्रकिरण।

इस उपन्यास में एक राजकुमार और एक राजकुमारी का परस्पर प्रीति में बंध जाना और राजकुमार के मित्र तथा राजकुमारी की सखी का प्रेमसूत्र में बंधना और अन्त में सब का सुखी होना। इसमें लड़ाई का वर्णन बड़ी खूबी के साथ किया गया है। मूल्य पांच आने। डाक व्यय दो आने।

पता—मैनेजर,—"श्रीसुदर्शन प्रेस" वृन्दावन।

रज़ीयाबेगम

या

रङ्गमहल में हलाहल

ऐतिहासिक उपन्यास ।

यह उपन्यास दिल्ली की सुलताना रज़ीयाबेगम के सम्बन्ध में है । इतिहासप्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। रज़ीया का अपनी मां और भाइयों को कैद करके तख़्त पर बैठना, एक जवांमर्द पर आशिक होना, और उस जवांमर्द याकूब का रज़ीया को नसीहत करना, रज़ीया की दो सहेली सौसन और गुलशन का याकूब और अयूब पर आशिक होना और रज़ीया का इससे जलकर दोनों सहेलियों को कैद करना। दिल्ली के शाही उमराओं का रज़ीया से नाराज होना और रज़ीया के हाथ से तख़्त का निकलना और फिर रज़ीयाबेगम का मारा जाना और उसके भाई का बादशाह होना और अखीर में सौसन के साथ याकूब की और गुलशन के साथ अयूब की शादी का होना आदि देखने ही योग्य है । इसमें मुसलमानी बादशाहत के वक्त हिन्दुओं की जो दुर्दशा थी, उसका चित्र बड़ी खूबी के साथ खींचा गया है। दो भाग की बड़ी पुस्तक का मूल्य सवा रुपया और डाक खर्च तीन आने ।

श्रीः

उपन्यासों की लूट ! ! !

हिन्दीभाषा के जगत्प्रसिद्ध सुलेखक श्रीकिशोरीलालगोस्वामीजी के बनाए हुए कई उपन्यास अभी हाल ही में फिर से छपे हैं। इस संस्करण में नीचे लिखे हुए उपन्यास बढ़ाकर बड़ी उत्तमता से छापे गए हैं। उपन्यास-प्रेमियों को अवश्य नीचे लिखे उपन्यास बहुत जल्द ज़रूर मंगाकर पढ़ना चाहिए। डांकमहसूल ज़िम्मे खरीदार होगा।

[१]	हीराबाई	=)	[१६]	याकूती तख़्ती	।=)
[२]	चन्द्रावली	=)	[१७]	लवङ्गलता	॥)
[३]	चन्द्रिका	=)	[१८]	हृदयहारिणी	॥)
[४]	जिन्दे की लाश	=)	[१९]	तरुणतपस्विनी	॥=)
[५]	इन्दुमती	=)	[२०]	स्वर्गीयकुसुम	१)
[६]	प्रणयिनीपरिणय	=)	[२१]	मल्लिकादेवी	१।)
[७]	लावण्यमई	=)	[२२]	रज़ीयाबेगम	१।)
[८]	प्रेममई	≡)	[२३]	लीलावती	१।)
[९]	पुनर्जन्म	≡)	[२४]	इन्दिरा	१।)
[१०]	त्रिवेणी	≡)	[२५]	पन्नाबाई	१॥)
[११]	गुलबहार	≡)	[२६]	तारा	१॥)
[१२]	सुखशर्व्वरी	।)	[२७]	माधवी-माधव	२)
[१३]	कनककुसुम	।-)	[२८]	लखनऊ की कब्र	२)
[१४]	कटेमूड़ की दो दो बातें	।-)	[२९]	चपला	२)
[१५]	चन्द्रकिरण	।-)	[३०]	राजसिंह	२॥)

नीचे लिखी हुई गाने आदि की पुस्तकें भी अभी हाल ही में छपी हैं,—

(१)	होली, मौसिमबहार	।)	(९)	सुजानरसखान	≡)
(२)	होली-रंग-घोली	।)	(१०)	नाट्यसम्भव	।=)
(३)	बसन्तबहार	=)	(११)	सन्ध्याप्रयोग (बड़ा)	=)
(४)	चैतीगुलाब	-)	(१२)	सन्ध्या संक्षेप	-)
(५)	सावनसुहावन	=)	(१३)	सन्ध्या भाषासहित	-)
(६)	प्रेमरत्नमाला	=)	(१४)	कापिलसूत्र	≡)
(७)	प्रेमवाटिका	=)	(१५)	ध्यानमञ्जरी	-)
(८)	प्रेमपुष्पमाला	=)	(१६)	वेदान्तकामधेनु	=)

मैनेजर,—"श्रीसुदर्शन प्रेस"—वृन्दावन (मथुरा)

सोना और सुगन्ध

या

पन्नाबाई

ऐतिहासिक उपन्यास

यह उपन्यास मुगल सम्राट अकबर के समय का है। पन्नाबाई और मानिकचन्द का प्रेम ऐसे अच्छे ढंग से दिखाया गया है, जो पढ़ने वालों के चित्त पर पूरा चुभ जाता है। मानिक का घर से निकाला जाना और पन्ना का उसके वियोग में तड़पना कलेजे को उड़ा देता है। पन्ना के बाप और मांमां की आपस की कहा सुनी का आनन्द पढ़ने से ही मालूम पड़ता है। क्या मजाल जो कम से कम सौ दफे हँसी न आवे। मानिकचन्द और निहालचन्द की मित्रता का चित्र ऐसी उत्तमता के साथ खींचा गया है, जो पाठकों के मन को एक बार ही अपनी ओर खींच लेता है। बादशाह अकबर का मानिक और निहालचन्द को अपना मित्र बनाकर दोनों को बड़ी बड़ी जागीरों के साथ महाराज बना देना उदारता का पूर्ण परिचायक है। शाहंशाह अकबर का दर्बार देखने ही योग्य है। फिर अखीर में मानिकचन्द और निहालचन्द की दिली ख्वाहिश का पूरा होना पढ़ने ही लायक है। इस ३५८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है और डाक व्यय तीन आने हैं। पता—

मैनेजर-श्रीसुदर्शनप्रेस, श्रीवृन्दावन (मथुरा).

तरुणतपस्विनी

वा

कुटीरवासिनी

इस उपन्यास में जयपुर के प्रसिद्ध चित्रकार घनश्याम और उसकी प्रेयसी चपला का वर्णन किया है। प्रेमरस का वर्णन जैसा इस उपन्यास में किया गया है, वैसा किसी भी उपन्यास में देखने को नहीं मिलेगा, यदि आप शुद्ध प्रेम, पवित्र प्रेम, निर्मल प्रेम, स्वाभाविक प्रेम, हार्द्दिक प्रेम और प्रेममय प्रेम का वर्णन पढ़ना चाहते हैं तो इस तरुण तपस्विनी उपन्यास को पढ़िए। डेढ़ सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य दस आने और डाक व्यय दो आने।

कटे मूड़ की दो दो बातें

वा

तिलस्मी शीसमहल

कटे मूंड की दो दो बातें। इसीका दूसरा नाम 'तिलस्मी सीसमहल' है। श्रीगोस्वामी किशोरी लालजी लिखित अद्वितीय उपन्यास। जिस समय भारतवर्ष में इष्टइण्डिया कम्पनी का राज्य था, देशडाकुओं के उपद्रव से अत्यन्त पीड़ित हो उठा था। उस समय सन् १८३५ ई० में भूपाल इलाके के डांकुओं को गिरफ्तार करने के लिये ठगी बिभाग के सुपरिंटेण्डेण्ट कप्तान रेनाल्ड साहब अपने दल बल सहित वहां गए थे। उसी समय के एक कतलूखां नाम के डांकू और उसकी जमुर्रद पहाड़ी के विचित्र सीसमहल का हाल इस उपन्यास में बड़ी उत्तमता से वर्णन किया गया है। उपन्यास बड़ाही रोचक है। मूल्य पांच आने।
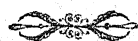
इन्दिरा।

यह उपन्यास बङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय श्रीबङ्किमचन्द्र चटर्जी का लिखा हुआ है। इसका हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पण्डित किशोरीलाल जी गोस्वामी ने किया है। यह उपन्यास बड़ा ही दिलचस्प और अनूठा है। इन्दिरा का ससुरार जाते समय रास्ते में डाकुओं के द्वारा लूटी जाना, फिर जङ्गलों में भटकना और धीरे धीरे एक वकील के यहां रसोई करने पर रहना और वकील की स्त्री के साथ सखी-भाव का स्थापित होना और बूढ़ी मिसरानी जी की दिल्लगी, पके बालों में खिजाब का परिहास आदि देखने ही योग्य है। अन्त में इन्दिरा के पति का वकील के यहां आकर ठहरना और फिर इन्दिरा का अपने पति के पास 'परनारी' के रूप में जाना और इन्दिरा को उसके पति का 'पर-स्त्री' समझकर ग्रहण करना और उसे लेभागना फिर अन्त में भेद का खुलना और इन्दिरा का सुखी होना आदि बड़ी ही विचित्र घटनाएं इस उपन्यास में हैं। पुस्तक पढ़ने ही योग्य है। बड़े आकार की बड़ी पुस्तक का मूल्य केवल सवा रुपया और डाक व्यय तीन आने।